अध्याय एक

संविधान– क्यों और कैसे?

11103CH01

परिचय

यह पुस्तक संविधान की कार्यप्रणाली पर लिखी गई है। आगे के अध्यायों में आप संविधान की कार्यप्रणाली के विभिन्न पहलुओं के बारे में पढ़ेंगे। हमारे देश के सरकार की विभिन्न संस्थाओं और उनके आपसी संबंधों के बारे में आप को ज्ञान होगा।

लेकिन इसके पहले कि आप चुनाव, सरकार, राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बारे में पढ़ें, यह समझना ज़रूरी है कि सरकार के पूरे ढाँचे और सरकार की संस्थाओं को नियंत्रित करने वाले विभिन्न सिद्धांतों की उत्पत्ति भारत के संविधान से हुई है।

इस अध्याय के अध्ययन से आपको निम्न बातों का ज्ञान होगा :

- *संविधान किसे कहते हैं;*
- *संविधान समाज को क्या देता है;*
- *संविधान समाज में शक्ति का बँटवारा कैसे करता है; और*
- *भारत का संविधान कैसे बनाया गया।*

© NCERT not to be republished

हमें संविधान की क्या आवश्यकता है?

संविधान क्या है? इसके कार्य क्या हैं? समाज के लिए उसकी क्या भूमिका है? हमारे दैनिक जीवन से संविधान का क्या संबंध है? इन प्रश्नों के उत्तर उतने कठिन नहीं हैं जितना आप सोचते हैं।

संविधान तालमेल बढ़ाता है और भरोसा दिलाता है

कल्पना करें कि आप एक बड़े समूह के सदस्य हैं। यह भी कल्पना करें कि उस समूह की कुछ विशेषताएँ हैं मसलन, उस समूह के सदस्य एक-दूसरे से अनेक तरह से भिन्न हैं। उनकी अलग-अलग धार्मिक निष्ठाएँ हैं; उनमें कुछ हिंदू, कुछ मुसलमान, कुछ ईसाई हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो किसी धर्म को नहीं मानते। वे और आधारों पर भी भिन्न हैं – वे अलग-अलग व्यवसाय करते हैं, उनकी भिन्न योग्यताएँ हैं, अलग-अलग शौक हैं, और सिनेमा से लेकर किताबों तक उनकी पसंद अलग-अलग है। उनमें कुछ धनी, तो कुछ गरीब हैं। कुछ लोग बूढ़े, तो कुछ जवान हैं। कल्पना करें कि ऐसे समूह के सदस्यों में जीवन के विभिन्न पहलुओं को लेकर विवाद है, जैसे-किसी व्यक्ति को कितनी संपत्ति रखने की इज़ाज़त होनी चाहिए? क्या सभी बच्चों को स्कूल भेजना अनिवार्य है या माता-पिता को इसका निर्णय लेने देना चाहिये? इस समूह को अपनी सुरक्षा के लिए कितना खर्च करना चाहिये? या इसकी जगह उसे बहुत सारे पार्क बनवाना चाहिये? क्या इस समूह को अपने ही कुछ सदस्यों के विरुद्ध भेदभाव करने देना चाहिए? भिन्न-भिन्न लोग इनमें से प्रत्येक प्रश्न का अलग-अलग उत्तर देंगे। लेकिन अपनी भिन्नताओं के बावजूद भी इस समूह को एक साथ रहना है। सदस्य अनेक रूपों में एक-दूसरे पर आश्रित हैं उन्हें एक-दूसरे के सहयोग की ज़रूरत होती है। इस समूह को शांतिपूर्वक एक साथ रहने के लिए क्या चाहिये?

यह समूह तो बहुत कुछ हमारे गाँव के लोगों जैसा है।

हाँ! यह तो हमारी कालोनी जैसा ही है। क्या आपके गाँव, शहर या कालोनी में भी ऐसे ही समूह हैं?

लेकिन इस समूह के लोग एक साथ रह सकते हैं यदि वे कुछ बुनियादी नियमों के बारे में सहमत हो जाएँ। इस समूह को ऐसे नियम क्यों चाहिये? कल्पना करें कि ऐसे बुनियादी नियमों के अभाव में क्या होगा? प्रत्येक सदस्य अपने को असुरक्षित महसूस करेगा क्योंकि

© NCERT not to be republished

उसे यह मालूम नहीं होगा कि समूह के सदस्य एक-दूसरे के साथ कैसा बर्ताव करेंगे और किसका किस चीज़ पर अधिकार है। किसी भी समूह को सार्वजनिक रूप से मान्यता प्राप्त कुछ बुनियादी नियमों की आवश्यकता होती है जिसे समूह के सभी सदस्य जानते हों, ताकि आपस में एक न्यूनतम समन्वय बना रहे। लेकिन ये नियम केवल पता ही नहीं होने चाहिए वरन् उन्हें लागू भी किया जाना चाहिये। यदि नागरिकों को यह विश्वास न हो कि दूसरे नागरिक भी उन नियमों का पालन करेंगे तो उनके पास भी उन नियमों को पालन करने का कोई आधार नहीं होगा। लेकिन जब यह कहा जाता है कि उन नियमों को न्यायालय में लागू किया जाएगा, तो इससे सभी को विश्वास हो जाता है कि और लोग भी इन नियमों का पालन करेंगे, क्योंकि ऐसा न करने पर उन्हें दंड दिया जाएगा।

संविधान का पहला काम यह है कि वह बुनियादी नियमों का एक ऐसा समूह उपलब्ध कराये जिससे समाज के सदस्यों में एक न्यूनतम समन्वय और विश्वास बना रहे।

खुद करें — खुद सीखें

पुस्तक के इस भाग में दिये गये विचार का अपनी कक्षा में प्रयोग करें। पूरी कक्षा वाद-विवाद करके उन निर्णयों पर पहुँचने की कोशिश करे, जो इस सत्र में सभी पर लागू होंगे। ये निर्णय निम्नलिखित के बारे में हो सकते हैं:

- *कक्षा प्रतिनिधि का चुनाव कैसे हो?*
- *कक्षा प्रतिनिधि पूरी कक्षा की ओर से कौन-सा निर्णय ले सकता है?*
- *क्या ऐसे भी निर्णय हैं जिन्हें कक्षा प्रतिनिधि पूरी कक्षा से परामर्श किये बिना नहीं ले सकता?*
- *यदि और लोग उससे सहमत हों, तो आप इसमें और बातें (कक्षा के लिए पिकनिक और यात्राओं के लिए पैसे जुटाने की योजना, अपने संसाधनों का साझा प्रयोग आदि) भी जोड़ सकते हैं। इसका ध्यान रहे कि इसमें वे बातें भी हो जिन पर पहले मतभेद रहा हो।*
- *यदि आवश्यकता पड़े तो इन निर्णयों को कैसे बदला जाए?*
- *इन सभी निर्णयों को कागज़ पर लिख लें और उसे नोटिस बोर्ड पर लगायें। इन निर्णयों को लेने में आपको किन कठिनाइयों का*

© NCERT not to be republished

सामना करना पड़ा? क्या विभिन्न छात्रों में इस पर मतभेद था? उन मतभेदों को आपने कैसे सुलझाया? क्या इस प्रक्रिया से पूरी कक्षा को कुछ लाभ हुआ?

निर्णय-निर्माण शक्ति की विशिष्टताएँ

संविधान कुछ ऐसे बुनियादी सिद्धांतों का समूह है जिसके आधार पर राज्य का निर्माण और शासन होता है। लेकिन ये बुनियादी नियम क्या हों? और ऐसी कौन-सी बात है जो उन्हें 'बुनियादी' बना देती है? पर हाँ ! सबसे पहले आपको यह तय करना पड़ेगा कि जिन नियमों के आधार पर समाज का शासन होता है उन्हें बनायेगा कौन ? आपको 'क' नियम बनाने की इच्छा है, लेकिन दूसरे लोग 'ख' नियम बनाना चाहते हैं। फिर यह कैसे तय किया जाए कि किसकी इच्छा वाले नियमों से हम पर शासन हो? जिन नियमों के अंतर्गत आप सभी को रखना चाहते हैं वे आपको सर्वश्रेष्ठ लग सकते हैं लेकिन दूसरे लोगों को लगता है कि उनके द्वारा सुझाये गये नियम सर्वश्रेष्ठ हैं। इस विवाद को कैसे सुलझाया जाए? अतः यह निर्णय करने से पहले कि हमारे समूह को किन नियमों से शासित होना है, हमें वास्तव में यह तय करना पड़ेगा कि उन नियमों को बनायेगा कौन?

संविधान ही इस प्रश्न का भी उत्तर देता है। वह समाज में शक्ति के मूल वितरण को स्पष्ट करता है। संविधान यह तय करता है कि कानून कौन बनायेगा? 'कानून कौन बनायेगा' – इस प्रश्न का उत्तर, सैद्धांतिक रूप में, कई प्रकार से दिया जा सकता है। राजतंत्र में कानून का निर्माण राजा करता है जबकि कुछ संविधान, जैसे पुराने सोवियत संघ के संविधान में निर्णय करने का अधिकार केवल एक पार्टी को दिया गया था। लेकिन लोकतांत्रिक संविधानों में निर्णय मोटे तौर पर जनता लेती है। लेकिन यह विषय इतना सरल नहीं है। यदि यह मान भी लिया जाए कि जनता निर्णय लेती है, तब भी यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि जनता निर्णय कैसे लेती है? क्या कोई कानून बनाने के लिए सभी लोगों को सहमत होना चाहिये? प्राचीन यूनान की पद्धति के अनुसार, क्या प्रत्येक मुद्दे पर सभी लोगों को वोट देना चाहिये? या लोगों को अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा अपनी राय को व्यक्त करना चाहिये? लेकिन लोगों को अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से काम करना हो, तो फिर उन प्रतिनिधियों का चयन कैसे हो? और कुल कितने प्रतिनिधि हों?

उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि अधिकतर कानून संसद बनायेगी, और इस संसद का गठन भी एक विशेष प्रकार से किया जाएगा। किसी समाज में कानून कैसे हैं – इसे देखने के पहले उन कानूनों को बनाने का अधिकार रखने वालों को पहचानना होगा। यदि संसद को कानून बनाने का अधिकार है, तो पहले उसे यह

© NCERT not to be republished

अधिकार देने वाला कोई कानून होना चाहिये। यह काम संविधान करता है। संविधान वह सत्ता है जो, सर्वप्रथम, सरकार बनाती है।

संविधान का दूसरा काम यह स्पष्ट करना है कि समाज में निर्णय लेने की शक्ति किसके पास होगी। संविधान यह भी तय करता है कि सरकार कैसे निर्मित होगी।

सरकार की शक्तियों पर सीमाएँ

मान लीजिये कि आपने यह तय कर लिया कि निर्णय कौन करेगा। किंतु, जब उस सत्ता ने कानून बनाए तब आपको लगा कि वे कानून पूर्णत: अनुचित हैं। उदाहरण के लिए उसने आपको अपने धर्म का पालन करने से रोक दिया या उसने यह निर्णय लिया कि किसी खास किस्म के रंग वाले वस्त्र नहीं पहने जा सकते या आप कुछ विशेष गीत गाने को स्वतंत्र नहीं हैं या किसी विशेष समूह (धर्म, जाति) के लोगों को सदैव दूसरों की सेवा करनी पड़ेगी और उन्हें किसी प्रकार की संपत्ति रखने का अधिकार भी नहीं होगा या सरकार किसी को भी मनमाने तरीके से गिरफ़्तार कर सकती है या किसी एक खास रंग वाले लोगों को ही कुएँ से पानी भरने की इज़ाज़त दी जाएगी। स्वाभाविक है कि आपको यह कानून अनुचित और अन्यायपूर्ण लगेंगे। यद्यपि ये सभी कानून उस सरकार द्वारा बनाये गये जो एक विशेष प्रक्रिया का पालन करके बनी थी, लेकिन सरकार द्वारा ऐसे कानूनों को बनाने के पीछे ज़रूर कोई अन्यायपूर्ण बात रही होगी।

कार्टून बूझें

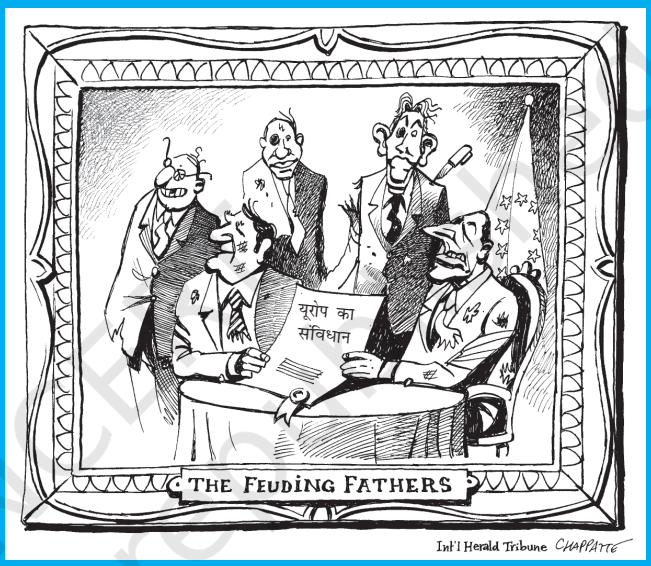

'यूरोपीय संविधान' पॉट्रिक शैपेट, इंटरनेशनल हेरल्ड ट्रिब्यून, 21 सितंबर 2004 © केगल कार्टूंस

यूरोपीय संघ के देशों ने एक यूरोपीय संविधान बनाने की कोशिश की। उनकी कोशिश असफल हो गई। कार्टूनिस्ट ने संविधान निर्माण के उनके प्रयास को मार-पीट और झगड़े से भरी कोशिश के रूप में देखा। क्या संविधान निर्माण की प्रक्रिया हमेशा ऐसी ही होती है?

© NCERT not to be republished

ओह ! तो इसका मतलब यह कि पहले आप एक राक्षस बनाये और फिर खुद को उससे बचाने की चिंता करें। मैं तो यही कहूँगा कि फिर इस राक्षस जैसी सरकार को बनाया ही क्यों जाए?

अतः संविधान का तीसरा काम यह है कि वह सरकार द्वारा अपने नागरिकों पर लागू किये जाने वाले कानूनों पर कुछ सीमाएँ लगाए। ये सीमाएँ इस रूप में मौलिक होती हैं कि सरकार कभी उसका उल्लंघन नहीं कर सकती।

संविधान सरकार की शक्तियों को कई तरह से सीमित करता है। सरकार की शक्तियों को सीमित करने का सबसे सरल तरीका यह है कि नागरिकों के रूप में हमारे मौलिक अधिकारों को स्पष्ट कर दिया जाए और कोई भी सरकार कभी भी उनका उल्लंघन न कर सके। इन अधिकारों का वास्तविक स्वरूप और व्याख्याएँ भिन्न-भिन्न संविधानों में बदलती रहती हैं। लेकिन अधिकतर संविधानों में कुछ विशेष मौलिक अधिकार सदैव पाये जाते हैं। नागरिकों को मनमाने ढंग से बिना किसी कारण के गिरफ़्तार करने के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त है। यह सरकार की शक्तियों के ऊपर एक मूलभूत सीमा है। नागरिकों को सामान्यतः कुछ मौलिक स्वतंत्रताओं का अधिकार है जैसे भाषण की स्वतंत्रता, अंतरात्मा की आवाज पर काम करने की स्वतंत्रता, संगठन बनाने की स्वतंत्रता आदि। व्यवहार में, इन अधिकारों को राष्ट्रीय आपातकाल में सीमित किया जा सकता है और संविधान उन परिस्थितियों का उल्लेख भी करता है जिनमें इन अधिकारों को वापिस लिया जा सकता है।

समाज की आकांक्षाएँ और लक्ष्य

अधिकतर पुराने संविधानों द्वारा केवल निर्णय लेने की शक्ति का वितरण और सरकार की शक्ति पर प्रतिबंध लगाने का काम किया जाता था। लेकिन बीसवीं शताब्दी के अनेक संविधान – जिनमें भारतीय संविधान एक अत्यंत सुंदर उदाहरण है, एक ऐसा सक्षम ढाँचा भी प्रदान करता है जिससे सरकार कुछ सकारात्मक कार्य कर सके और समाज की आकांक्षाओं और उसके लक्ष्य को अभिव्यक्ति दे सके। भारतीय संविधान ने इस संबंध में कुछ नये प्रयोग किये। जिन समाजों में नाना प्रकार की असमानताओं की गहरी खाइयाँ हों, वहाँ केवल सरकार की शक्तियों पर प्रतिबंध लगाना ही पर्याप्त नहीं, वरन् वहाँ सरकार को समर्थ और शक्तिशाली भी बनाना पड़ेगा जिससे वह असमानता और गरीबी के विभिन्न रूपों से निपट सकें।

उदाहरण के लिए भारत की आकांक्षा है कि हम एक ऐसा समाज बनाएँ जिसमें जातिगत भेदभाव न हों। यदि यह हमारे समाज की आकांक्षा है, तो हमें अपनी सरकार को इतना समर्थ और शक्तिशाली बनाना पड़ेगा कि वह इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सभी आवश्यक

© NCERT not to be republished

कदम उठा सके। दक्षिण अफ्रीका नस्लीय भेदभाव के पुराने इतिहास का उदाहरण है। उसके नये संविधान ने सरकार को इस योग्य बनाया है कि वह नस्लीय भेदभाव को मिटा सके। वास्तव में एक संविधान अपने समाज की आकांक्षाओं का पिटारा है। उदाहरण के लिए भारत में संविधान निर्माताओं की इच्छा थी कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को बुनियादी भौतिक ज़रूरतें और शिक्षा सहित वह सब कुछ मिलना चाहिये जिसके आधार पर वह गरिमा और सामाजिक आत्मसम्मान से भरा हुआ जीवन जी सके। भारतीय संविधान सरकार को वह सामर्थ्य प्रदान

कार्टून बूझें

4 दिसंबर 1949

शंकर © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

संविधान निर्माताओं को लोगों के अलग-अलग आकांक्षाओं से जूझना पड़ा। यहाँ पर नेहरू को अनेक भावी कल्पनाओं और विचारधाराओं में संतुलन करते दिखाया गया है। क्या आप पहचान सकते हैं कि ये विभिन्न समूह क्या चाहते हैं? आपको क्या लगता है? संतुलन करने का अंतिम परिणाम क्या हुआ?

करता है जिससे वह कुछ सकारात्मक लोक–कल्याणकारी कदम उठा सके और जिन्हें कानून की मदद से लागू भी किया जा सके। जैसे-जैसे हम भारतीय संविधान को पढ़ते हैं, हमें पता चलता है कि ऐसी सामर्थ्य प्रदान करने वाले प्रावधानों को हमारे संविधान की प्रस्तावना का समर्थन प्राप्त है और वे संविधान के मौलिक अधिकारों वाले भाग में पाये जाते हैं।

© NCERT not to be republished

राज्य के नीति-निर्देशक तत्व भी सरकार से लोगों की कुछ आकांक्षाएँ पूरी करने की अपेक्षा करते हैं। संविधान में अच्छी बातें लिखने में क्या जाता है? लेकिन ऐसी ऊँची आकांक्षाओं और लक्ष्यों को लिखने का मतलब क्या है यदि वे लोगों के जीवन को बदल न सकें?

संविधान का चौथा काम यह है कि वह सरकार को ऐसी क्षमता प्रदान करे जिससे वह जनता की आकांक्षाओं को पूरा कर सके और एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए उचित परिस्थितियों का निर्माण कर सके।

संविधान के समर्थ बनाने वाले प्रावधान

संविधान सरकार की शक्तियों को नियंत्रित करने वाले नियमों और कानूनों का ही नाम नहीं है। वह सरकार को ऐसी शक्तियाँ भी देता है जिससे वह समाज की सामूहिक भलाई के लिये काम कर सके।

- दक्षिण अफ्रीका का संविधान सरकार को अनेक उत्तरदायित्त्व सौंपता है। वह सरकार को पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने और अन्यायपूर्ण भेदभाव से व्यक्तियों और समूहों को बचाने का प्रयास करने के लिये कदम उठाने का अधिकार देता है और यह प्रावधान भी करता है कि सरकार धीरे-धीरे सभी के लिये पर्याप्त आवास और स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराये।
- इंडोनेशिया में सरकार की ज़िम्मेदारी है कि वह राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था बनाए और उसका संचालन करे। इंडोनेशिया का संविधान यह भी सुनिश्चित करता है कि सरकार गरीब और अनाथ बच्चों की देखभाल करेगी।

राष्ट्र की बुनियादी पहचान

आखिरी और शायद सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संविधान किसी समाज की बुनियादी पहचान होता है।

इसका अर्थ यह है कि संविधान के माध्यम से ही किसी समाज की एक सामूहिक इकाई के रूप में पहचान होती है। इस सामूहिक पहचान को बनाने के लिए हमें इस संबंध में कुछ बुनियादी नियमों पर सहमत होना पड़ता है कि हम पर शासन कैसे होगा और शासितों में कौन-कौन से लोग होंगे। संविधान बनने के पहले हमारी अन्य अनेक प्रकार की पहचान या अस्मिताएँ होती हैं। लेकिन कुछ बुनियादी नियमों और सिद्धांतों पर सहमत होकर हम अपनी मूलभूत *राजनीतिक पहचान* बनाते हैं। दूसरा, संवैधानिक नियम हमें एक ऐसा विशाल

© NCERT not to be republished

ढाँचा प्रदान करते हैं जिसके अंतर्गत हम अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं, लक्ष्य और स्वतंत्रताओं का प्रयोग करते हैं। संविधान आधिकारिक बंधन लगा कर यह तय कर देता है कि कोई क्या कर सकता है और क्या नहीं। अतः संविधान हमें एक *नैतिक पहचान* भी देता है। तीसरा, और अंतिम, अब शायद यह संभव हो सका है कि अनेक बुनियादी राजनीतिक और नैतिक नियम विश्व के सभी प्रकार के संविधानों में स्वीकार किये गये हैं।

अगर हम दुनिया भर के संविधानों को देखें तो हमें सरकारों के अलग–अलग स्वरूप और विविध प्रकार की प्रक्रियाएँ दिखाई देंगी। लेकिन उनमें काफी कुछ साझा भी है। अधिकतर संविधान कुछ मूलभूत अधिकारों की रक्षा करते हैं और ऐसी सरकारें संभव बनाते हैं जो किसी न किसी रूप में लोकतांत्रिक होती हैं। लेकिन राष्ट्रीय पहचान की अवधारणा अलग–अलग संविधानों में अलग–अलग ढंग की होती है। ज़्यादातर राष्ट्र विभिन्न जटिल ऐतिहासिक परंपराओं के सम्मिलन से बनते हैं। वे उस राष्ट्र में रहने वाले विभिन्न समूहों को कई तरीकों से आपस में मिला लेते हैं, जैसे जर्मनी का निर्माण 'जर्मन नस्ल' के आधार पर हुआ। संविधान ने इस पहचान को अभिव्यक्ति दी। दूसरी ओर भारतीय संविधान जातीयता या नस्ल को नागरिकता के आधार के रूप में मान्यता नहीं देता। विभिन्न राष्ट्रों में देश की केंद्रीय सरकार और विभिन्न क्षेत्रों के बीच के संबंधों को लेकर भिन्न–भिन्न अवधारणाएँ होती हैं। यह संबंध उस देश की राष्ट्रीय पहचान बनाता है।

संविधान की सत्ता

हमने संविधान द्वारा किये जाने वाले कुछ कार्यों की रूपरेखा प्रस्तुत की है।

कार्टून बूझें

इराक में सद्दाम हुसैन की सत्ता खत्म होने पर एक नए संविधान की रचना करने में देश के विभिन्न जातीय समूहों में काफी संघर्ष दिखाई दिया। इन भिन्न–भिन्न लोगों की क्या माँगे हैं? इसमें दिखाये गये संघर्ष की यूरोपीय संघ और भारत के संबंध में पिछले कार्टून में दिखाये संघर्ष से तुलना करें।

इराकी संविधान, जान ट्रेवर, अल्बुकर्क जर्नल, 18 अगस्त 2005 © केगल कार्टूंस

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

नीचे भारतीय और अन्य संविधानों के कुछ प्रावधान दिये गये हैं। बताएँ कि इनमें प्रत्येक प्रावधान का क्या कार्य है।

सरकार किसी भी नागरिक को किसी धर्म का पालन करने या न करने की आज्ञा नहीं दे सकती।	सरकार की शक्ति या सीमा
सरकार को आय और संपत्ति की असमानता को कम करने का प्रयास अवश्य करना चाहिये।	
राष्ट्रपति के पास प्रधानमंत्री को नियुक्त करने की शक्ति है।	
संविधान वह सर्वोच्च कानून है जिसका सभी को पालन करना पड़ता है।	
भारतीय नागरिकता किसी खास नस्ल, जाति या धर्म तक सीमित नहीं है।	

इन कार्यों से स्पष्ट होता है कि क्यों अधिकतर समाजों में एक संविधान होता है। लेकिन संविधान के बारे में हम तीन और प्रश्न कर सकते हैं :

(क) संविधान क्या है?

(ख) संविधान कितना प्रभावी है?

(ग) क्या संविधान न्यायपूर्ण है?

अधिकतर देशों में 'संविधान' एक लिखित दस्तावेज़ के रूप में होता है जिसमें राज्य के बारे में कई प्रावधान होते हैं। यह प्रावधान बताते हैं कि राज्य का गठन कैसे होगा और वह किन सिद्धांतों का पालन करेगा। जब हम किसी देश के संविधान की बात करते हैं तो सामान्य रूप से हम उसी दस्तावेज़ का ज़िक्र कर

© NCERT not to be republished

रहे होते हैं। लेकिन कुछ देशों जैसे इंग्लैंड के पास ऐसा कोई दस्तावेज़ नहीं है जिसे संविधान कहा जा सके बल्कि उनके पास दस्तावेज़ों और निर्णयों की एक लंबी शृंखला है जिसे सामूहिक रूप से संविधान कहा जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि संविधान वह दस्तावेज़ या दस्तावेज़ों का पुँज है जो उन कार्यों को करने का प्रयास करता है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

लेकिन विश्व में अनेक संविधान केवल कागज़ पर ही होते हैं। वे केवल थोथे शब्द होते हैं और कुछ नहीं। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कोई संविधान कितना प्रभावी है? उसे कौन-सी बात प्रभावी बनाती है? कौन-सी बात यह सुनिश्चित करती है कि लोगों के जीवन पर वास्तव में उसका प्रभाव पड़ा है? संविधान का प्रभावी होना अनेक कारणों पर निर्भर है।

संविधान को प्रचलन में लाने का तरीका

इसका मतलब है कि कोई संविधान कैसे अस्तित्व में आया। किसने संविधान बनाया और उनके पास इसे बनाने की कितनी शक्ति थी? अनेक देशों में संविधान इसीलिए निष्प्रभावी होते हैं क्योंकि वे सैनिक शासकों या ऐसे अलोकप्रिय नेताओं के द्वारा बनाये जाते हैं जिनके पास लोगों को अपने साथ लेकर चलने की क्षमता नहीं होती। विश्व के सर्वाधिक सफल संविधान भारत, दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका के हैं। ये ऐसे संविधानों के उदाहरण हैं जिन्हें एक सफल राष्ट्रीय आंदोलन के बाद बनाया गया। यद्यपि भारतीय संविधान को औपचारिक रूप से एक संविधान सभा ने दिसंबर 1946 और नवंबर 1949 के मध्य बनाया पर ऐसा करने में उसने राष्ट्रीय आंदोलन के लंबे इतिहास से काफी प्रेरणा ली। राष्ट्रीय आंदोलन में समाज के सभी वर्गों को एक साथ लेकर चलने की विलक्षण क्षमता थी। संविधान को भारी वैधता मिली क्योंकि उसे ऐसे लोगों ने बनाया जिनमें समाज का अटूट विश्वास था और जिनके पास समाज के विभिन्न वर्गों से सीधा संवाद करने और उनका सम्मान प्राप्त करने की क्षमता थी। संविधान निर्माता लोगों को यह समझाने में सफल रहे कि संविधान उनकी व्यक्तिगत शक्तियों को बढ़ाने का कोई साधन नहीं है। यही कारण है कि संविधान को भारी वैधता मिली। संविधान का अंतिम प्रारूप उस समय की व्यापक राष्ट्रीय आम सहमति को व्यक्त करता है।

लोगों को जब यह पता चलता है कि उनका संविधान न्यायपूर्ण नहीं है तो वे क्या करते हैं? ऐसे लोगों का क्या होता है जिनका संविधान केवल कागज़ पर ही होता है?

कुछ देशों ने अपने संविधान पर पूर्ण जनमत संग्रह कराया जिसमें सभी लोग अपनाये जा रहे संविधान के पक्ष या विपक्ष में राय देते हैं। भारतीय संविधान पर ऐसा कोई जनमत

© NCERT not to be republished

संग्रह नहीं हुआ। लेकिन इसे लोगों की ओर से प्रबल शक्ति प्राप्त थी क्योंकि यह बहुत ही लोकप्रिय नेताओं की सहमति और समर्थन पर आधारित था और लोगों ने उसके प्रावधानों पर अमल करके उसे अपना लिया। अत: संविधान बनाने वालों का प्रभाव भी एक हद तक संविधान की सफलता की संभावना सुनिश्चित करता है।

संविधान के मौलिक प्रावधान

एक सफल संविधान की यह विशेषता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को संविधान के प्रावधानों का आदर करने का कोई कारण अवश्य देता है। उदाहरण के लिए जिस संविधान में बहुसंख्यकों को समाज के अल्पसंख्यक समूहों का उत्पीड़न करने की अनुमति दी गई हो, वहाँ अल्पसंख्यकों के पास कोई कारण नहीं होगा कि वे संविधान के प्रावधानों का आदर करें। कोई संविधान अन्य लोगों की तुलना में कुछ लोगों को ज़्यादा सुविधाएँ देता है या सुनियोजित ढंग से समाज के छोटे-छोटे समूहों की शक्ति को और मज़बूत करता है तो उसे जनता की निष्ठा मिलनी बंद हो जाएगी। यदि कोई समूह यह महसूस करे कि उसकी 'पहचान' को दबाया जा रहा है तो उसके पास संविधान को मानने का कोई कारण नहीं होगा। कोई भी संविधान खुद से न्याय के आदर्श स्वरूप की स्थापना नहीं करता लेकिन उसे लोगों को विश्वास दिलाना पड़ता है कि वह बुनियादी न्याय को प्राप्त करने के लिए ढाँचा उपलब्ध कराता है।

नेपाल के संविधान निर्माण का विवाद

संविधान बनाना कोई आसान और सुगम काम नहीं है। नेपाल संविधान बनाने की एक जटिल प्रक्रिया का उदाहरण है। 1948 के बाद से नेपाल में पाँच संविधान बनाये जा चुके हैं : 1948, 1951, 1959, 1962 और 1990 में। लेकिन ये सभी संविधान नेपाल-नरेश द्वारा 'प्रदान' किए गए। 1990 में संविधान द्वारा बहु-दलीय लोकतंत्र की शुरुआत की गई पर अनेक क्षेत्रों में नरेश के पास अंतिम शक्तियाँ बनी रहीं। पिछले वर्षों में नेपाल में सरकार और राजनीति की पुनर्संरचना के लिए सशस्त्र राजनीतिक आंदोलन चल रहा था। उसमें प्रमुख मुद्दा यही था कि संविधान में राजा की भूमिका क्या होनी चाहिए। नेपाल के कुछ समूह राजतंत्र नामक संस्था को ही खत्म करने और गणतांत्रिक सरकार की स्थापना के पक्ष में थे। कुछ लोगों का मानना था कि राजा की सीमित भूमिका के साथ संवैधानिक राजतंत्र का बना रहना उपयोगी रहेगा। स्वयं राजा भी शक्तियों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। राजा ने अक्तूबर 2002 में समस्त शक्तियों को अपने हाथ में ले लिया।

बहुत सारे राजनीतिक दल और संगठन एक नई संविधान सभा के गठन की मांग कर रहे थे। नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) जनता द्वारा चुनी गई संविधान सभा के संघर्ष में सबसे आगे थी। अंतत: जन प्रदर्शन के दबाव के सामने झुकते हुए राजा को एक ऐसी सरकार बनवानी पड़ी जो आंदोलनकारी दलों को स्वीकार्य थी। इस सरकार ने राजा की लगभग सभी शक्तियाँ छीन लीं। 2008 में नेपाल ने राजतंत्र को खत्म किया और लोकतांत्रिक गणराज्य बन गया। अंतत: नेपाल ने 2015 में नये संविधान को अपनाया।

© NCERT not to be republished

आप इस विचार को प्रयोग में लाएँ। स्वयं अपने से यह प्रश्न पूछिये : समाज के कुछ बुनियादी नियमों में ऐसी कौन-सी चीज़ें होनी चाहिए जिनसे सभी लोगों को उन्हें मानने का एक कारण मिल सके?

कोई संविधान अपने सभी नागरिकों की स्वतंत्रता और समानता की जितनी अधिक सुरक्षा करता है उसकी सफलता की संभावना उतनी ही बढ़ जाती है। मोटे तौर पर कहें, तो क्या भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को एक ना एक ऐसा कारण देता है जिससे वह उसकी सामान्य रूपरेखा का समर्थन कर सके? इस पुस्तक को पढ़ने के बाद आप इस प्रश्न का 'हाँ' में उत्तर देने की स्थिति में होने चाहिए।

संस्थाओं की संतुलित रूपरेखा

संविधान को जनता नहीं प्राय: एक छोटा समूह ही नष्ट कर देता है क्योंकि वह अपनी शक्तियाँ बढ़ाना चाहता है। ढंग से बनाये संविधान में शक्तियों को इस प्रकार बाँट दिया जाता है जिससे कोई एक समूह संविधान को नष्ट न कर सके। संविधान की रूपरेखा बनाने की एक कारगर विधि यह सुनिश्चित करना है कि किसी एक संस्था का सारी शक्तियों पर एकाधिकार न हो। ऐसा करने के लिए शक्तियों को कई संस्थाओं में बाँट दिया जाता है। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान शक्ति को एक समान धरातल पर विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसी संस्थाओं और स्वतंत्र संवैधानिक निकाय जैसे निर्वाचन आयोग आदि में बाँट देता है। इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि यदि कोई एक संस्था संविधान को नष्ट करना चाहे तो अन्य दूसरी संस्थाएँ उसके अतिक्रमण को नियंत्रित कर लेंगी। अवरोध और संतुलन के कुशल प्रयोग ने भारतीय संविधान की सफलता सुनिश्चित की है।

संस्थाओं की रूपरेखा बनाने में इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि उसमें बाध्यकारी मूल्य, नियम और प्रक्रियाओं के साथ अपनी कार्यप्रणाली में लचीलापन का संतुलन होना चाहिए जिससे वह बदलती आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल सके। ज़्यादा कठोर संविधान परिवर्तन के दबाव में नष्ट हो जाते हैं और दूसरी ओर, यदि संविधान अत्यधिक लचीला है तो वह समाज को सुरक्षा और पहचान न दे सकेगा। सफल संविधान प्रमुख मूल्यों की रक्षा करने और नई परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढालने में एक संतुलन रखते हैं। आप भारतीय संविधान निर्माताओं की समझदारी को नवें अध्याय (संविधान : एक जीवंत दस्तावेज़) में महसूस करेंगे जिसमें भारतीय संविधान को एक जीवंत दस्तावेज़ की संज्ञा दी गई है। अपने प्रावधानों में परिवर्तन की संभावना और एक हद तक ठोस रूप में संतुलन बैठा कर संविधान सुनिश्चित करता है कि वह दीर्घायु होगा और जनता का आदर प्राप्त करेगा। इस

© NCERT not to be republished

व्यवस्था से यह भी सुनिश्चित हो जाता है कि कोई भी वर्ग या समूह अपने बल-बूते संविधान को नष्ट नहीं कर सकेगा।

कार्टून बूझें

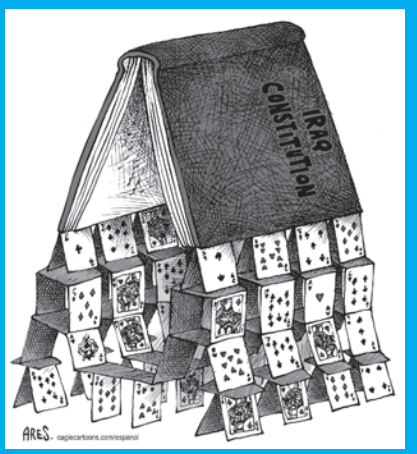

'ताश के पत्तों का महल' ऐस सिंबर, 2005 © केगल कार्टूस

कार्टून बनाने वाले ने नये इराकी संविधान को 'ताश के पत्तों का महल' क्यों कहा? क्या यह वर्णन भारतीय संविधान पर लागू होगा?

अत: यह पता लगाने के लिए कि क्या किसी संविधान की सत्ता मान्य है, आप अपने से तीन प्रश्न पूछ सकते हैं:

- क्या जिन लोगों ने संविधान बनाया वे विश्वसनीय थे? इस प्रश्न का उत्तर इसी अध्याय में आगे मिलेगा।
- दूसरा क्या संविधान ने सुनिश्चित किया था कि सूझबूझ के साथ शक्ति को इस प्रकार संगठित किया जाए कि किसी एक समूह के लिए संविधान नष्ट करना आसान न हो। और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि क्या संविधान सबको कुछ ऐसा कारण देता है कि वे संविधान का पालन करें? इस पुस्तक के अधिकतर हिस्से में इसी प्रश्न का उत्तर दिया गया है।
- क्या संविधान लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं का पिटारा है? संविधान द्वारा लोगों की निष्ठा प्राप्त करने की योग्यता काफी कुछ इस बात पर भी निर्भर करती है कि संविधान न्यायपूर्ण है या नहीं। भारतीय संविधान में न्याय के बुनियादी सिद्धांत क्या हैं? इस पुस्तक का अंतिम अध्याय इस प्रश्न का उत्तर देगा।

भारतीय संविधान कैसे बना ?

आइये देखें कि भारतीय संविधान कैसे बना। औपचारिक रूप से एक संविधान सभा ने संविधान को बनाया जिसे अविभाजित भारत में निर्वाचित किया गया था। इसकी पहली बैठक 9 दिसंबर 1946 को हुई और फिर 14 अगस्त, 1947 को विभाजित भारत के संविधान सभा के रूप में इसकी पुन: बैठक हुई। संविधान सभा के सदस्य 1935 में स्थापित प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष विधि से चुने गए। संविधान सभा की रचना लगभग उसी योजना के अनुसार हुई जिसे ब्रिटिश मंत्रिमंडल की एक समिति – 'कैबिनेट मिशन' ने प्रस्तावित किया था। इस योजना के अनुसार –

- प्रत्येक प्रांत, देशी रियासत या रियासतों के समूह को उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें दी गईं। मोटे तौर पर दस लाख की जनसंख्या पर एक सीट का अनुपात रखा गया।

© NCERT not to be republished

परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार के प्रत्यक्ष शासन वाले प्रांतों को 292 सदस्य चुनने थे तथा देशी रियासतों को न्यूनतम 93 सीटें आवंटित की गईं।

- प्रत्येक प्रांत की सीटों को तीन प्रमुख समुदायों – मुसलमान, सिख और सामान्य में उनकी जनसंख्या के अनुपात में बाँट दिया गया।
- प्रांतीय विधान सभाओं में प्रत्येक समुदाय के सदस्यों ने अपने प्रतिनिधियों को चुना और इसके लिए उन्होंने समानुपातिक प्रतिनिधित्व और एकल संक्रमण मत पद्धति का प्रयोग किया।
- देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के चुनाव का तरीका उनके परामर्श से तय किया गया।

अध्याय के पिछले भाग में उन तीनों कारकों पर प्रकाश डाला गया जो संविधान को प्रभावी और सम्मान के योग्य बनाते हैं। भारतीय संविधान इस परीक्षा में किस हद तक कामयाब होता है?

अधिक जानकारी के लिए, देखें

http://164.100.47.194/loksabha/constituent/facts.html

अपने राजनीतिक लोकतंत्र को हमें सामाजिक लोकतंत्र का रूप भी देना चाहिए। राजनीतिक लोकतंत्र तब तक स्थायी नहीं रह सकता है, जब तक कि उसका आधार सामाजिक लोकतंत्र न हो। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ जीवन के उस मार्ग से है, जो स्वतंत्रता, समता और बंधुता को जीवन के सिद्धांतों के रूप में स्वीकार करता है। स्वतंत्रता, समता और बंधुता के सिद्धांतों को इन तीनों के एक संयुक्त रूप से पृथक-पृथक रूपों में नहीं समझना चाहिए। ये तीनों मिलकर एक ऐसा संयुक्त रूप बनाते हैं कि इनमें से एक को दूसरे से अलग करना लोकतंत्र के मूल प्रयोजन को ही विफल कर देना है। स्वतंत्रता को समता से अलग नहीं किया जा सकता है, समता को स्वतंत्रता से अलग नहीं किया जा सकता है। और न ही स्वतंत्रता और समता को बंधुता से अलग किया जा सकता है। समताविहीन स्वतंत्रता कुछ व्यक्तियों की अनेक व्यक्तियों पर प्रभुता को जन्म देगी। स्वतंत्रताविहीन समता व्यक्तिगत पहल को नष्ट कर देगी। बंधुता के बिना स्वतंत्रता और समता अपना स्वाभाविक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 979, 25 नवंबर 1949

क्या आपकी कक्षा में स्वतंत्रता, समता और बंधुता के सिद्धांतों को व्यवहार में लाया जाता है? इनको एक साथ कैसे व्यवहार में ला सकते हैं? अपने साथियों के साथ चर्चा कीजिए।

© NCERT not to be republished

संविधान सभा का स्वरूप

3 जून 1947 की योजना के अनुसार विभाजन के बाद वे सभी प्रतिनिधि संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे जो पाकिस्तान के क्षेत्रों से चुनकर आये थे। संविधान सभा के वास्तविक सदस्यों की संख्या घट कर 299 रह गई। इनमें से 26 नवंबर, 1949 को कुल 284 सदस्य उपस्थित थे। इन्होंने ही अंतिम रूप से पारित संविधान पर अपने हस्ताक्षर किये।

इस प्रकार इस उपमहाद्वीप में विभाजन से उपजी विभीषिका और हिंसा के बीच संविधान निर्माण का काम हुआ। लेकिन संविधान निर्माताओं के धैर्य की प्रशंसा करनी पड़ेगी कि उन्होंने न केवल अत्यधिक दबाव में एक संविधान बनाया बल्कि विभाजन के कारण हुई अकल्पनीय हिंसा से सही सबक भी लिया। भारत के संविधान ने नागरिकता की एक नई अवधारणा प्रस्तुत की। इसके अंतर्गत अल्पसंख्यक न केवल सुरक्षित होंगे बल्कि धार्मिक पहचान का नागरिक अधिकारों पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

लेकिन संविधान सभा के गठन का यह विवरण केवल सतही तौर पर ही हमें बताता है कि संविधान वास्तव में बना कैसे। यद्यपि हमारी संविधान सभा के सदस्य सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुने गये थे पर उसे ज़्यादा से ज़्यादा प्रतिनिधिपरक बनाने का गंभीर प्रयास किया गया। सभी धर्मों के सदस्यों को ऊपर बतायी गयी विधि से प्रतिनिधित्व दिया गया। इसके अतिरिक्त संविधान सभा में अनुसूचित जातियों के अट्ठाईस सदस्य थे। जहाँ तक राजनीतिक दलों का सवाल है विभाजन के बाद संविधान सभा में काँग्रेस का वर्चस्व था और उसे 82 प्रतिशत सीटें प्राप्त थीं। लेकिन काँग्रेस स्वयं विविधताओं से भरी हुई एक ऐसी पार्टी थी जिसमें लगभग सभी विचारधाराओं की नुमाइंदगी थी।

यदि भारत की संविधान सभा देश के सभी लोगों के द्वारा निर्वाचित होती तो क्या होता? क्या वह उस संविधान सभा से भिन्न होती जो बनाई गई ?

संविधान सभा के कामकाज की शैली

संविधान सभा की सत्ता केवल इस बात पर ही नहीं टिकी थी कि वह मोटे तौर पर (हालांकि पूर्ण रूप से नहीं) सबका प्रतिनिधित्व कर रही थी। संविधान बनाने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया और सदस्यों

© NCERT not to be republished

के विचार-विमर्श की जड़ में छुपे मूल्यों में ही संविधान सभा की लोकप्रिय सत्ता का आधार था। जहाँ प्रतिनिधित्व का दावा करने वाली किसी सभा के लिए वांछनीय है कि उसमें समाज के विभिन्न वर्ग सहभागी हों वहीं यह भी महत्त्वपूर्ण है कि वे केवल अपनी पहचान या समुदाय का ही प्रतिनिधित्व न करें। संविधान सभा के सदस्यों ने पूरे देश के हित को ध्यान में रखकर विचार-विमर्श किया। सदस्यों में प्राय: मतभेद हो जाते थे लेकिन सदस्यों द्वारा अपने हितों को आधार बना कर शायद ही कोई मतभेद हुआ हो।

ये मतभेद वास्तव में वैध सैद्धांतिक आधार पर थे। हालाँकि संविधान सभा में अनेक मतभेद थे : भारत में शासन प्रणाली केंद्रीकृत होनी चाहिए या विकेंद्रीकृत? राज्यों के बीच कैसे संबंध होने चाहिए? न्यायपालिका की क्या शक्तियाँ होनी चाहिए? क्या संविधान को संपत्ति के अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए? लगभग उन सभी विषयों पर गहराई से चर्चा हुई जो आधुनिक राज्य की बुनियाद हैं। संविधान का केवल एक ही प्रावधान ऐसा है जो लगभग बिना किसी वाद-विवाद के पास हो गया। यह प्रावधान सार्वभौमिक मताधिकार का था जिसका अर्थ है कि धर्म, जाति, शिक्षा, लिंग और आय के आधार पर भेदभाव के बिना सभी नागरिकों को एक निश्चित आयु प्राप्त करने पर वोट देने का अधिकार होगा। सदस्यों ने इस पर वाद-विवाद आवश्यक नहीं माना कि किसे वोट देने का अधिकार होना चाहिए, लेकिन इसके अतिरिक्त प्रत्येक विषय पर गंभीर विचार-विमर्श और वाद-विवाद हुए।

इस सभा की लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति निष्ठा का इससे बढ़िया व्यावहारिक रूप कुछ और नहीं हो सकता था।

संविधान सभा को असली ताकत इस बात से मिल रही थी कि वह सार्वजनिक हित का काम कर रही है। इसके सदस्यों ने चर्चा और तर्कपूर्ण बहसों पर काफी जोर दिया। उन्होंने सिर्फ अपने हितों की बात नहीं की बल्कि अपनी सोच और फ़ैसले के पक्ष में अन्य सदस्यों को सैद्धांतिक कारण दिए। अपनी सोच के पक्ष में दूसरों से तर्कपूर्ण संवाद स्वार्थ या संकीर्णता से ऊपर उठा देता है। संविधान सभा में हुई चर्चा कई मोटे-मोटे खंडों में प्रकाशित हुई है और हर अनुच्छेद को लेकर जैसी विस्तृत और बारीकी से बातचीत हुई है वह सार्वजनिक विवेक की भावना को सबसे प्रामाणिक ढंग से सामने लाती है। ये बहसें भी फ्रांसीसी और अमेरिकी क्रांति की तरह संविधान निर्माण के इतिहास के सबसे महत्त्वपूर्ण और यादगार अध्यायों में से हैं।

कार्यविधि

संविधान सभा की सामान्य कार्यविधि में भी सार्वजनिक विवेक का महत्त्व स्पष्ट दिखाई देता था। विभिन्न मुद्दों के लिए संविधान सभा की आठ मुख्य कमेटियाँ थीं। आम तौर पर जवाहरलाल

© NCERT not to be republished

नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल या बी.आर. अंबेडकर इन कमेटियों की अध्यक्षता करते थे। ये ऐसे लोग थे जिनके विचार हर बात पर एक-दूसरे के समान नहीं थे। अंबेडकर तो कांग्रेस और गांधी के कड़े आलोचक थे और उन पर अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए पर्याप्त काम न करने का आरोप लगाते थे। पटेल और नेहरू बहुत-से मुद्दों पर एक-दूसरे से असहमत थे। फिर भी सबने एक साथ मिलकर काम किया। प्रत्येक कमेटी ने आम तौर पर संविधान के कुछ-कुछ प्रावधानों का प्रारूप तैयार किया जिन पर बाद में पूरी संविधान सभा में चर्चा की गई। आम तौर पर यह प्रयास किया गया कि फ़ैसले आम राय से हों और कोई भी प्रावधान किसी खास हित समूह के पक्ष में न हो। कई प्रावधानों पर निर्णय मत विभाजन करके भी लिए गए। ऐसे अवसरों पर भी हर सरोकार का ध्यान रखा गया और हर तर्क और शंका का समाधान बहुत ही सावधानी से किया गया। लिखित रूप में उनका जवाब दिया गया। दो वर्ष और ग्यारह महीने की अवधि में संविधान सभा की बैठकें 166 दिनों तक चलीं। इसके सत्र अखबारों और आम लोगों के लिए खुले हुए थे।

संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद और प्रारूप समिति के सभापति डॉ. बी.आर. अंबेडकर एक दूसरे का अभिवादन करते हुए

...जैसा मैंने महसूस किया, शायद ही किसी ने किया हो कि प्रारूप समिति के सदस्यों विशेषकर इसके सभापति डॉ. अंबेडकर ने अस्वस्थ होने के बावजूद कितने उत्साह और लगन के साथ कार्य किया। डॉ. अंबेडकर को प्रारूप समिति में शामिल करने और इसके सभापति बनाने के निर्णय से बेहतर और कोई निर्णय नहीं हो सकता था। उन्होंने न केवल अपने चयन को न्यायोचित सिद्ध किया बल्कि उन्होंने जो कार्य किया उसे भी गरिमा प्रदान की। इस संबंध में समिति के अन्य सदस्यों में परस्पर भेद करना पक्षपातपूर्ण होगा। मैं जानता हूँ कि उन सभी ने उतने ही उत्साह और लगन के साथ कार्य किया, जितना कि उसके सभापति ने। वे सभी देश की कृतज्ञता के पात्र हैं।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 994, 26 नवंबर 1949

राष्ट्रीय आंदोलन की विरासत

लेकिन कोई भी संविधान केवल अपनी संविधान सभा के बूते नहीं बनता। भारत की संविधान सभा इतनी विविधतापूर्ण थी कि वह सामान्य ढंग से काम ही नहीं कर सकती थी यदि उसके पीछे उन सिद्धांतों पर आम सहमति न होती जिन्हें संविधान में रखा जाना था। इन सिद्धांतों पर

© NCERT not to be republished

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सहमति बनी। एक तरह से संविधान सभा केवल उन सिद्धांतों को मूर्त रूप और आकार दे रही थी जो उसने राष्ट्रीय आंदोलन से विरासत में प्राप्त किए थे। संविधान लागू होने के कई दशक पूर्व से ही राष्ट्रीय आंदोलन में उन प्रश्नों पर चर्चा हुई थी जो संविधान बनाने के लिए प्रासंगिक थे, जैसे – भारत में सरकार का स्वरूप और संरचना कैसी होनी चाहिए, हमें किन मूल्यों का समर्थन करना चाहिए, किन असमानताओं को दूर किया जाना चाहिए आदि? उन बहसों से प्राप्त निष्कर्षों को ही संविधान में अंतिम रूप प्रदान किया गया।

राष्ट्रीय आंदोलन से जिन सिद्धांतों को संविधान सभा में लाया गया उसका सर्वोत्तम सारांश हमें नेहरू द्वारा 1946 में प्रस्तुत 'उद्देश्य–प्रस्ताव' में मिलता है। इस प्रस्ताव में संविधान सभा के उद्देश्यों को परिभाषित किया गया था। इस प्रस्ताव में संविधान की सभी आकांक्षाओं और मूल्यों को समाहित किया गया था। पिछले भाग में जिसे संविधान के मौलिक प्रावधान कहा गया था वह वास्तव में उद्देश्य–प्रस्ताव में समाहित मूल्यों से प्रेरित और उनका सारांश है। इसी प्रस्ताव के आधार पर हमारे संविधान में समानता, स्वतंत्रता, लोकतंत्र, संप्रभुता और एक सर्वजनीन पहचान जैसी बुनियादी प्रतिबद्धताओं को संस्थागत स्वरूप दिया गया। अतः हमारा संविधान केवल नियमों और प्रक्रियाओं की भूलभुलैया नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी सरकार बनाने की नैतिक प्रतिबद्धता है जो राष्ट्रीय आंदोलन में लोगों को दिये गये आश्वासनों को पूरा करेगी।

संस्थागत व्यवस्थाएँ

संविधान को प्रभावी बनाने का तीसरा कारक यह है कि सरकार की सभी संस्थाओं को संतुलित ढंग से व्यवस्थित किया जाए। मूल सिद्धांत यह रखा गया कि सरकार लोकतांत्रिक रहे और जन–कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो। संविधान सभा ने शासन के विभिन्न अंगों – विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका – के बीच समुचित संतुलन स्थापित करने के लिए बहुत विचार–मंथन किया। संविधान सभा ने संसदीय शासन व्यवस्था और संघात्मक

यदि हमें 1937 में स्वतंत्रता मिल जाती तो क्या होता? हमें 1957 तक इंतज़ार करना पड़ता तो क्या होता? क्या तब बनाया गया संविधान हमारे वर्तमान संविधान से भिन्न होता?

© NCERT not to be republished

उद्देश्य-प्रस्ताव के प्रमुख बिंदु

- भारत एक स्वतंत्र, संप्रभु गणराज्य है;
- भारत ब्रिटेन के अधिकार में आने वाले भारतीय क्षेत्रों, देशी रियासतों और देशी रियासतों के बाहर के ऐसे क्षेत्र जो हमारे संघ का अंग बनना चाहते हैं, का एक संघ होगा।
- संघ की इकाइयाँ स्वायत्त होंगी और उन सभी शक्तियों का प्रयोग और कार्यों का संपादन करेंगी जो संघीय सरकार को नहीं दी गईं।
- संप्रभु और स्वतंत्र भारत तथा इसके संविधान की समस्त शक्तियों और सत्ता का स्रोत जनता है।
- भारत के सभी लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; कानून के समक्ष समानता; प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा कानून और सार्वजनिक नैतिकता की सीमाओं में रहते हुए भाषण, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, व्यवसाय, संगठन और कार्य करने की मौलिक स्वतंत्रता की गारंटी और सुरक्षा दी जायेगी।
- अल्पसंख्यकों, पिछड़े व जनजातीय क्षेत्र, दलित व अन्य पिछड़े वर्गों को समुचित सुरक्षा दी जायेगी।
- गणराज्य की क्षेत्रीय अखंडता तथा थल, जल और आकाश में इसके संप्रभु अधिकारों की रक्षा सभ्य राष्ट्रों के कानून और न्याय के अनुसार की जायेगी।
- विश्वशांति और मानव कल्याण के विकास के लिए देश स्वेच्छापूर्वक और पूर्ण योगदान करेगा।

व्यवस्था को स्वीकार किया जो एक ओर विधायिका और कार्यपालिका के बीच तथा दूसरी ओर केंद्रीय सरकार और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण करती है।

शासकीय संस्थाओं की सर्वाधिक संतुलित व्यवस्था स्थापित करने में हमारे संविधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के प्रयोगों और अनुभवों से कुछ सीखने में कोई संकोच नहीं किया। इसी प्रकार हमारे संविधान निर्माताओं ने अन्य संवैधानिक परंपराओं से कुछ ग्रहण करने से भी कोई परहेज नहीं किया। यह उनके व्यापक ज्ञान का प्रमाण है कि उन्होंने किसी भी ऐसे बौद्धिक तर्क या ऐतिहासिक उदाहरण की अनदेखी नहीं की जो उनके कार्य को संपन्न

© NCERT not to be republished

करने के लिए ज़रूरी था। अत: उन्होंने विभिन्न देशों से अनेक प्रावधानों को भी लिया।

लेकिन उन विचारों को लेना कोई नकलची मानसिकता का परिणाम नहीं था बल्कि बात इससे बिलकुल अलग थी। संविधान के प्रत्येक प्रावधान को इस आधार पर उचित सिद्ध करना था कि वह भारत की समस्याओं और आशाओं के अनुरूप है। यह भारत का सौभाग्य ही था कि हमारी संविधान सभा ने संकुचित दृष्टिकोण छोड़कर संपूर्ण विश्व से सर्वोत्तम चीज़ों को ग्रहण किया और उन्हें अपना बना लिया।

क्या यह संविधान उधार का था? हम ऐसा संविधान क्यों नहीं बना सके जिसमें कहीं से कुछ भी उधार न लिया गया हो?

हम पूछना चाहेंगे कि विश्व–इतिहास के इस पड़ाव पर बनाये गये संविधान में क्या कुछ नया भी हो सकता है।... आज इस समय बनाये संविधान में यदि कुछ नया हो सकता है तो वह यह कि उसमें केवल कुछ ऐसे परिवर्तन किये जाएँ जो कमियों को दूर करें और उसे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बना सकें।

–डॉ. बी. आर. अंबेडकर
संविधान सभा वाद–विवाद, खंड VII, पृष्ठ 37
4 नवंबर 1948

संविधान सभा में चर्चा की अध्यक्षता करते हुए डॉ. बी.आर. अंबेडकर

© NCERT not to be republished

विभिन्न देशों के संविधानों से लिए गए प्रावधान

© NCERT not to be republished

निष्कर्ष

यह संविधान निर्माताओं की बुद्धिमत्ता और दूरदृष्टि का प्रमाण है कि वे देश को एक ऐसा संविधान दे सके जिसमें जनता द्वारा मान्य आधारभूत मूल्यों और सर्वोच्च आकांक्षाओं को स्थान दिया गया था। यही वह कारण है जिसकी वजह से इतनी जटिलता से बनाया संविधान न केवल अस्तित्व में है, बल्कि एक जीवंत सच्चाई भी है जबकि दुनिया के अन्य अनेक संविधान कागज़ी पोथों में ही दब कर रह गए।

भारत का संविधान एक विलक्षण दस्तावेज़ है जो अन्य अनेक देशों, खासतौर से दक्षिण अफ्रीका के लिए एक प्रतिमान हो गया। तीन वर्ष तक संविधान बनाने की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य यह रहा कि एक ऐसा संतुलित संविधान बनाया जाए जिसमें संविधान द्वारा निर्मित संस्थाएँ अस्त-व्यस्त या कामचलाऊ व्यवस्थाएँ मात्र न हों बल्कि लोगों की आकांक्षाओं को एक लंबे समय तक संजोये रख सकें। आप पुस्तक के शेष भाग में इन व्यवस्थाओं के बारे में पढ़ेंगे।

प्रश्नावली

1. इनमें कौन-सा संविधान का कार्य नहीं है?
   (क) यह नागरिकों के अधिकार की गारंटी देता है।
   (ख) यह शासन की विभिन्न शाखाओं की शक्तियों के अलग-अलग क्षेत्र का रेखांकन करता है।
   (ग) यह सुनिश्चित करता है कि सत्ता में अच्छे लोग आयें।
   (घ) यह कुछ साझे मूल्यों की अभिव्यक्ति करता है।

2. निम्नलिखित में कौन-सा कथन इस बात की एक बेहतर दलील है कि संविधान की प्रमाणिकता संसद से ज़्यादा है?
   (क) संसद के अस्तित्व में आने से कहीं पहले संविधान बनाया जा चुका था।
   (ख) संविधान के निर्माता संसद के सदस्यों से कहीं ज्यादा बड़े नेता थे।
   (ग) संविधान ही यह बताता है कि संसद कैसे बनायी जाय और इसे कौन-कौन-सी शक्तियाँ प्राप्त होंगी।
   (घ) संसद, संविधान का संशोधन नहीं कर सकती।

© NCERT not to be republished

3. बतायें कि संविधान के बारे में निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत?
   (क) सरकार के गठन और उसकी शक्तियों के बारे में संविधान एक लिखित दस्तावेज़ है।
   (ख) संविधान सिर्फ लोकतांत्रिक देशों में होता है और उसकी ज़रूरत ऐसे ही देशों में होती है।
   (ग) संविधान एक कानूनी दस्तावेज़ है और आदर्शों तथा मूल्यों से इसका कोई सरोकार नहीं।
   (घ) संविधान एक नागरिक को नई पहचान देता है।

4. बतायें कि भारतीय संविधान के निर्माण के बारे में निम्नलिखित अनुमान सही हैं या नहीं? अपने उत्तर का कारण बतायें।
   (क) संविधान-सभा में भारतीय जनता की नुमाइंदगी नहीं हुई। इसका निर्वाचन सभी नागरिकों द्वारा नहीं हुआ था।
   (ख) संविधान बनाने की प्रक्रिया में कोई बड़ा फ़ैसला नहीं लिया गया क्योंकि उस समय नेताओं के बीच संविधान की बुनियादी रूपरेखा के बारे में आम सहमति थी।
   (ग) संविधान में कोई मौलिकता नहीं है क्योंकि इसका अधिकांश हिस्सा दूसरे देशों से लिया गया है।

5. भारतीय संविधान के बारे में निम्नलिखित प्रत्येक निष्कर्ष की पुष्टि में दो उदाहरण दें।
   (क) संविधान का निर्माण विश्वसनीय नेताओं द्वारा हुआ। उनके लिए जनता के मन में आदर था।
   (ख) संविधान ने शक्तियों का बँटवारा इस तरह किया कि इसमें उलट-फेर मुश्किल है।
   (ग) संविधान जनता की आशा और आकांक्षाओं का केंद्र है।

6. किसी देश के लिए संविधान में शक्तियों और जिम्मेदारियों का साफ-साफ निर्धारण क्यों ज़रूरी है? इस तरह का निर्धारण न हो, तो क्या होगा?

7. शासकों की सीमा का निर्धारण करना संविधान के लिए क्यों ज़रूरी है? क्या कोई ऐसा भी संविधान हो सकता है जो नागरिकों को कोई अधिकार न दे।

8. जब जापान का संविधान बना तब दूसरे विश्वयुद्ध में पराजित होने के बाद जापान अमेरिकी सेना के कब्जे में था। जापान के संविधान में ऐसा कोई प्रावधान होना असंभव था, जो अमेरिकी सेना को पसंद न हो। क्या आपको लगता है कि संविधान को इस तरह बनाने में कोई कठिनाई है? भारत में संविधान बनाने का अनुभव किस तरह इससे अलग है?

© NCERT not to be republished

9. रजत ने अपने शिक्षक से पूछा – 'संविधान एक पचास साल पुराना दस्तावेज़ है और इस कारण पुराना पड़ चुका है। किसी ने इसको लागू करते समय मुझसे राय नहीं माँगी। यह इतनी कठिन भाषा में लिखा हुआ है कि मैं इसे समझ नहीं सकता। आप मुझे बतायें कि मैं इस दस्तावेज़ की बातों का पालन क्यों करूँ?' अगर आप शिक्षक होते तो रजत को क्या उत्तर देते?

10. संविधान के क्रिया-कलाप से जुड़े अनुभवों को लेकर एक चर्चा में तीन वक्ताओं ने तीन अलग-अलग पक्ष लिए –

(क) हरबंस – भारतीय संविधान एक लोकतांत्रिक ढाँचा प्रदान करने में सफल रहा है।

(ख) नेहा – संविधान में स्वतंत्रता, समता और भाईचारा सुनिश्चित करने का विधिवत् वादा है। चूँकि ऐसा नहीं हुआ इसलिए संविधान असफल है।

(ग) नाजिमा – संविधान असफल नहीं हुआ, हमने उसे असफल बनाया।

क्या आप इनमें से किसी पक्ष से सहमत हैं, यदि हाँ, तो क्यों? यदि नहीं, तो आप अपना पक्ष बतायें।

राज्य सभा टीवी शृंखला 'संविधान : भारतीय संविधान के निर्माण की कहानी' तथा 'गांधी', 'सरदार' और 'डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर' जैसी फ़िल्में देखें एवं चर्चा करें। जिस संदर्भ में संविधान बनाया गया, उसको समझने में ये दृश्य-श्रव्य सामग्रियाँ मदद करेंगी। ये हमारे राष्ट्रीय नेताओं के जीवन और समय को जानने में भी आपकी मदद करेंगी।

© NCERT not to be republished

अध्याय दो

भारतीय संविधान में अधिकार

11103CH02

परिचय

संविधान हमें केवल सरकार के विभिन्न अंगों की संरचना और उनके परस्पर अंतर्संबंधों के बारे में ही नहीं बताता। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में पढ़ा, संविधान वह दस्तावेज़ है जो सरकार की शक्तियों पर अंकुश रख कर एक ऐसी प्रजातांत्रिक व्यवस्था की स्थापना करता है जिसमें सभी व्यक्तियों को कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। इस अध्याय में हम भारतीय संविधान में निहित मौलिक अधिकारों का अध्ययन करेंगे। संविधान के तीसरे भाग में मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है; उसमें प्रत्येक मौलिक अधिकार के प्रयोग की सीमा का भी उल्लेख है। बीते हुए छह दशकों में अधिकारों का स्वरूप परिवर्तित भी हुआ है और कुछ विस्तृत भी। इस अध्याय में आपको निम्न बातों का ज्ञान होगा:

- *भारतीय संविधान कौन-कौन से मौलिक अधिकार प्रदान करता है;*
- *उन अधिकारों को कैसे सुरक्षित किया जाता है;*
- *उन अधिकारों की व्याख्या व सुरक्षा करने में न्यायपालिका की क्या भूमिका रही है; और*
- *मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में क्या अंतर है।*

© NCERT not to be republished

अधिकारों का महत्त्व

1982 के एशियाई खेलों से पहले निर्माण कार्य के लिए सरकार ने कुछ ठेकेदारों की सेवाएँ ली। अनेक फ्लाईओवरों और स्टेडियमों का निर्माण करना था और इसके लिए ठेकेदारों ने देश के विभिन्न भागों से बड़ी संख्या में गरीब मिस्त्री और मज़दूरों की भर्ती की। लेकिन मज़दूरों से कामकाज की दयनीय दशा में काम लिया गया। उन्हें सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मज़दूरी से भी कम मज़दूरी दी गई। समाज वैज्ञानिकों की एक टीम ने उनकी स्थिति का अध्ययन कर सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की। उन्होंने दलील दी कि तय की गई न्यूनतम मज़दूरी से कम मज़दूरी देना 'बेगार' या 'बंधुआ मज़दूरी' जैसा है और नागरिकों को प्राप्त 'शोषण के विरुद्ध' मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। न्यायालय ने इस दलील को स्वीकार कर लिया और सरकार को निर्देश दिया कि वह इन हज़ारों मज़दूरों को उनके काम के लिए तयशुदा मज़दूरी दिलाए।

***मचल लालुँग** को जब गिरफ़्तार किया गया तब वह 23 वर्ष का था। लालुँग असम के मड़िगाँव जिले के चुबुरी गाँव का रहने वाला था। उस पर आरोप था कि उसने किसी को गंभीर चोट पहुँचाई। मुकदमें की सुनवाई के दौरान उसे मानसिक रूप से काफी अस्वस्थ पाया गया और चिकित्सा के लिए तेजपुर के 'लोकप्रिय गोपीनाथ बोरदोलोई अस्पताल' में एक कैदी के रूप में भर्ती करा दिया गया। वहाँ उसका सफलतापूर्वक इलाज किया गया। डॉक्टरों ने जेल अधिकारियों को दो बार (1967, 1996) चिट्ठी भेजी कि लालुँग स्वस्थ है और उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है। लेकिन किसी ने भी उस पर ध्यान नहीं दिया। लालुँग न्यायिक हिरासत में बना रहा। मचल लालुँग को जुलाई, 2005 में जेल से छोड़ा गया। उस समय वह 77 वर्ष का हो चुका था। इस प्रकार वह 54 वर्ष तक हिरासत में रहा और इस दौरान उसके मुकदमे की एक बार भी सुनवाई नहीं हुई। जब राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा नियुक्त एक टीम ने राज्य में बंदियों का निरीक्षण किया तब जाकर लालुँग को स्वतंत्र होने का अवसर मिला।*

मचल का पूरा जीवन ही व्यर्थ बीत गया क्योंकि उसके मुकदमे की सुनवाई ही न हो सकी। हमारा संविधान सभी नागरिकों को 'जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार' देता है। इसका अर्थ है कि हर नागरिक को अपने मुकदमे की निष्पक्ष और त्वरित सुनवाई का अधिकार है। मचल लालुँग का मामला उस स्थिति का संकेत करता है जब संविधान द्वारा दिये गये अधिकार व्यवहार में प्राप्त नहीं होते।

अगर लालुँग धनी और ताकतवर होता तब क्या होता? यदि निर्माण करने वाले ठेकेदार के साथ काम करने वाले लोग इंजीनियर होते तो क्या होता? क्या उनके साथ भी अधिकारों का इसी तरह से हनन होता?

© NCERT not to be republished

इसी प्रकार पहले उदाहरण में भी संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन दिखाई देता है। लेकिन उसे न्यायालय में चुनौती दी गई। इससे मज़दूरों को उचित मज़दूरी मिली जिसके वे हकदार थे। 'शोषण के विरुद्ध संवैधानिक अधिकार' के कारण उन मज़दूरों को न्याय मिल सका।

अधिकारों का घोषणापत्र

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से अधिकारों और उन्हें लागू किये जाने का महत्त्व पता चलता है। इसलिये, अधिकतर लोकतांत्रिक देशों में नागरिकों के अधिकारों को संविधान में सूचीबद्ध कर दिया जाता है। प्रजातंत्र में यह सुनिश्चित होना चाहिए कि व्यक्तियों को कौन-कौन से अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें सरकार सदैव मान्यता देगी। संविधान द्वारा प्रदान किये गये और संरक्षित अधिकारों की ऐसी सूची को 'अधिकारों का घोषणापत्र' कहते हैं। अतः अधिकारों का घोषणापत्र सरकार को नागरिकों के अधिकारों के विरुद्ध काम करने से रोकता है और उसका उल्लंघन हो जाने पर उपचार सुनिश्चित करता है।

संविधान नागरिकों के अधिकारों को किससे संरक्षित करता है? नागरिक के अधिकारों को किसी अन्य व्यक्ति या निजी संगठन से खतरा हो सकता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को सरकार द्वारा सुरक्षा प्रदान किये जाने की आवश्यकता होती है। यह ज़रूरी है कि सरकार व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध हो। इसके अतिरिक्त सरकार के विभिन्न अंग (विधायिका, कार्यपालिका, नौकरशाही या न्यायपालिका) अपने कार्यों के संपादन में व्यक्ति के अधिकारों का हनन कर सकते हैं।

मैं समझ गया! अधिकारों का घोषणापत्र उस 'वारंटी कार्ड' की तरह है जो हमें टी. वी. या पंखा खरीदने पर मिलता है। है न?

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान, स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने इन अधिकारों का महत्त्व समझा था और माँग की थी कि अंग्रेज़ शासकों को जनता के अधिकारों का आदर करना चाहिये। 1928 में ही 'मोतीलाल नेहरू समिति' ने 'अधिकारों के एक घोषणापत्र' की माँग उठाई थी। अतः यह स्वाभाविक था कि स्वतंत्रता के बाद संविधान निर्माण के दौरान संविधान में अधिकारों का समावेश करने व उन्हें सुरक्षित करने पर सभी की राय

© NCERT not to be republished

एक थी। संविधान में उन अधिकारों को सूचीबद्ध किया गया जिन्हें सुरक्षा देनी थी और उन्हें 'मौलिक अधिकारों' की संज्ञा दी गई।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है 'मौलिक अधिकार' अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं और इसीलिए उन्हें संविधान में सूचीबद्ध किया गया है और उनकी सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान बनाये गये हैं। वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि संविधान स्वयं यह सुनिश्चित करता है कि सरकार भी उनका उल्लंघन न कर सके।

मौलिक अधिकार हमारे अन्य अधिकारों से भिन्न हैं। जहाँ साधारण कानूनी अधिकारों को सुरक्षा देने और लागू करने के लिए साधारण कानूनों का सहारा लिया जाता है, वहीं मौलिक अधिकारों की गारंटी और उनकी सुरक्षा स्वयं संविधान करता है। सामान्य अधिकारों को संसद कानून बना कर परिवर्तित कर सकती है लेकिन मौलिक अधिकारों में परिवर्तन के लिए संविधान में संशोधन करना पड़ता है। इसके अलावा सरकार का कोई भी अंग मौलिक अधिकारों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता। इस अध्याय में हम आगे पढ़ेंगे कि सरकार के कार्यों से मौलिक अधिकारों के हनन को

दक्षिण अफ्रीका के संविधान में अधिकारों का घोषणापत्र

दक्षिण अफ्रीका का संविधान दिसंबर 1996 में लागू हुआ। इसे तब बनाया और लागू किया गया जब रंगभेद वाली सरकार के हटने के बाद दक्षिण अफ्रीका गृहयुद्ध के खतरे से जूझ रहा था। दक्षिण अफ्रीका के संविधान के अनुसार ''उसके अधिकारों का घोषणापत्र दक्षिण अफ्रीका में प्रजातंत्र की आधारशिला है।'' यह नस्ल, लिंग, गर्भधारण, वैवाहिक स्थिति, जातीय या सामाजिक मूल, रंग, आयु, अपंगता, धर्म, अंतरात्मा, आस्था, संस्कृति, भाषा और जन्म के आधार पर भेदभाव वर्जित करता है। यह नागरिकों को संभवत: सबसे ज्यादा व्यापक अधिकार देता है। संवैधानिक अधिकारों को एक विशेष संवैधानिक न्यायालय लागू करता है।

दक्षिण अफ्रीका के संविधान में सम्मिलित कुछ प्रमुख अधिकार निम्न हैं –

- गरिमा का अधिकार
- निजता का अधिकार
- श्रम-संबंधी समुचित व्यवहार का अधिकार
- स्वस्थ पर्यावरण और पर्यावरण संरक्षण का अधिकार
- समुचित आवास का अधिकार
- स्वास्थ्य सुविधाएँ, भोजन, पानी और सामाजिक सुरक्षा का अधिकार
- बाल-अधिकार
- बुनियादी और उच्च शिक्षा का अधिकार
- सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई समुदायों का अधिकार
- सूचना प्राप्त करने का अधिकार

© NCERT not to be republished

रोकने की शक्ति और इसका उत्तरदायित्व न्यायपालिका के पास है। विधायिका या कार्यपालिका के किसी कार्य या निर्णय से यदि मौलिक अधिकारों का हनन होता है या उन पर अनुचित प्रतिबंध लगाया जाता है तो न्यायपालिका उसे अवैध घोषित कर सकती है। लेकिन मौलिक अधिकार निरंकुश या असीमित अधिकार नहीं हैं। सरकार मौलिक अधिकारों के प्रयोग पर 'औचित्यपूर्ण' प्रतिबंध लगा सकती है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की तुलना दक्षिण अफ्रीका के संविधान में दिये गये अधिकारों के घोषणापत्र से करें। उन अधिकारों की एक सूची बनायें जो –

- दोनों संविधानों में पाये जाते हों।
- दक्षिण अफ्रीका में हों पर भारत में नहीं।
- दक्षिण अफ्रीका के संविधान में स्पष्ट रूप से दिये गये हों पर भारतीय संविधान में निहित माने जाते हैं।

समता का अधिकार

निम्न दो स्थितियों पर विचार करें। ये काल्पनिक स्थितियाँ हैं। पर ऐसी बातें होती रहती हैं और आगे भी हो सकती हैं। क्या आपको उनमें मौलिक अधिकारों का उल्लंघन दिखाई देता है?

- *स्वदेश कुमार अपने गाँव गया। उसके साथ उसका एक दोस्त भी था। गाँव के एक होटल में उन्हें चाय पीने की इच्छा हुई। दुकानदार स्वदेश कुमार को जानता था पर उसके मित्र की जाति जानने के लिए उसने उसका नाम पूछा। उसके बाद दुकानदार ने स्वदेश कुमार को तो एक सुंदर कप में चाय दी, लेकिन उसके दोस्त को कुल्हड़ में चाय दी क्योंकि वह दलित था।*
- *टेलीविजन के एक चैनल में समाचार पढ़ने वाले कुल दस सदस्यों में से केवल चार को यह आदेश दिया गया कि आगे वे समाचार न पढ़ें। वे सभी महिलायें थीं। इसका कारण यह बताया गया कि वे सभी 45 वर्ष की उम्र को पार कर चुकी हैं। लेकिन उस अवस्था को पार कर चुके दो पुरुषों पर यह प्रतिबंध नहीं लगाया गया।*

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

भाग III : मौलिक अधिकार

समता का अधिकार

√ कानून के समक्ष समानता
- कानूनों के समान संरक्षण

√ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध
- दुकानों, होटलों, कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों आदि में प्रवेश की समानता

√ रोजगार में अवसर की समानता

√ छूआछूत का अंत

√ उपाधियों का अंत

स्वतंत्रता का अधिकार

√ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार
- भाषण और अभिव्यक्ति का
- शांतिपूर्ण ढंग से जमा होने और सभा करने का
- संगठित होने का
- भारत में कहीं भी आने-जाने का
- भारत के किसी भी हिस्से में बसने और रहने का
- कोई भी पेशा चुनने, व्यापार करने का

√ अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण

√ जीवन की रक्षा और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार

√ शिक्षा का अधिकार

√ अभियुक्तों और सजा पाए लोगों के अधिकार

शोषण के विरुद्ध अधिकार

√ मानव के दुर्व्यापार और बंधुआ मज़दूरी पर रोक

√ जोखिम वाले कामों में बच्चों से मज़दूरी कराने पर रोक

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

√ आस्था और प्रार्थना की आज़ादी

√ धार्मिक मामलों के प्रबंधन

√ किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए कर अदायगी की स्वतंत्रता

√ कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या उपासना में उपस्थित होने की स्वतंत्रता

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार

√ अल्पसंख्यकों की भाषा और संस्कृति के संरक्षण का अधिकार

√ अल्पसंख्यकों को शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार

संवैधानिक उपचारों का अधिकार

√ मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए न्यायालय में जाने का अधिकार

© NCERT not to be republished

क्या ऐसी बातें हमारे देश में होती हैं? या ये सब केवल काल्पनिक हैं?

ये भेदभाव के स्पष्ट उदाहरण हैं। एक में जाति व दूसरे में लिंग के आधार पर भेदभाव किया गया। आपकी राय में क्या ऐसा भेदभाव उचित है?

'समता का अधिकार' ऐसे और अन्य प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास करता है। यह सार्वजनिक स्थलों – जैसे दुकान, होटल, मनोरंजन-स्थल, कुआँ, स्नान-घाट और पूजा-स्थलों में समानता के आधार पर प्रवेश देता है। केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी के आधार पर प्रवेश में कोई भेदभाव नहीं हो सकता। यह उपर्युक्त आधारों पर लोक सेवाओं में भी कोई भेदभाव वर्जित करता है। यह अधिकार बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पहले हमारे समाज में समानता के आधार पर प्रवेश नहीं दिया जाता था।

छुआछूत की प्रथा असमानता का सबसे भद्दा रूप है। 'समता के अधिकार' के द्वारा इसे समाप्त कर दिया गया। उसी अधिकार के अंतर्गत यह भी व्यवस्था की गई है कि केवल उन लोगों को छोड़कर जिन्होंने सेना या शिक्षा के क्षेत्र में गौरवपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की है राज्य किसी भी व्यक्ति को कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा। इस प्रकार समता का अधिकार भारत को एक सच्चे लोकतंत्र के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है जिसमें सभी नागरिकों को समान प्रतिष्ठा व गरिमा प्राप्त हो सके।

क्या आपने अपने संविधान की प्रस्तावना पढ़ी है? यह समानता को कैसे परिभाषित करती है? आप पाएँगे कि प्रस्तावना में समानता

अनुच्छेद 16 (4) – ''इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्त्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का प्रावधान करने से नहीं रोकेगी''

© NCERT not to be republished

के बारे में दो बातों का उल्लेख है: प्रतिष्ठा की समानता और अवसर की समानता। अवसर की समानता का अर्थ है कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर मिले। लेकिन जब समाज में अनेक सामाजिक विषमताएँ व्याप्त हों, तो वहाँ समान अवसरों का क्या मतलब हो सकता है? संविधान स्पष्ट करता है कि सरकार बच्चों, महिलाओं तथा सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की बेहतरी के लिए विशेष योजनाएँ व निर्णय लागू कर सकती है। आपने नौकरियों और स्कूलों में प्रवेश के लिए 'आरक्षण' के बारे में अवश्य सुना होगा। आपको संभवतया आश्चर्य भी हुआ होगा कि समानता के सिद्धांत का पालन करने के बावजूद यहाँ 'आरक्षण' क्यों है?

वास्तव में संविधान का अनुच्छेद 16 (4) साफ-साफ कहता है कि आरक्षण जैसी नीति को समानता के अधिकार के उल्लंघन के रूप में नहीं देखा जा सकता। यदि आप संविधान की भावना देखें तो आप पाएँगे कि 'अवसर की समानता' के अधिकार को पूरा करने के लिए यह ज़रूरी है।

आप एक न्यायाधीश हैं

आप को ओडिशा के पुरी जिले के 'दलित समुदाय के एक सदस्य' हादिबंधु से एक पोस्टकार्ड मिलता है। उसमें लिखा है कि उसके समुदाय के पुरुषों ने उस प्रथा का पालन करने से इंकार कर दिया जिसके अनुसार उन्हें उच्च जातियों के विवाहोत्सव में दूल्हे और सभी मेहमानों के पैर धोने पड़ते थे। इसके बदले उस समुदाय की चार महिलाओं को पीटा गया और उन्हें निर्वस्त्र करके घुमाया गया। पोस्टकार्ड लिखने वाले के अनुसार, ''हमारे बच्चे शिक्षित हैं और वे उच्च जातियों के पुरुषों के पैर धोने, विवाह में भोज के बाद जूठन हटाने और बर्तन माँजने का परंपरागत काम करने को तैयार नहीं हैं।''

यह मानते हुए कि उपर्युक्त तथ्य सही है, आपको निर्णय करना है कि क्या इस घटना में मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है? आप इसमें सरकार को क्या करने का आदेश देंगे?

© NCERT not to be republished

अनुच्छेद 21 – जीवन और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण ''किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा अन्यथा नहीं।''

स्वतंत्रता का अधिकार

किसी भी लोकतंत्र में समता और स्वतंत्रता सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकार है। इनमें से एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वतंत्रता का अर्थ है चिंतन, अभिव्यक्ति और कार्य करने की स्वतंत्रता। लेकिन स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि हम जैसा चाहें वैसा करने लगें। यदि ऐसा करने की इज़ाज़त दे दी जाय तो बहुत सारे लोग अपनी स्वतंत्रता का आनंद उठाने से वंचित हो जाएंगे। अत: स्वतंत्रता को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है कि बिना किसी अन्य की स्वतंत्रता को नुकसान पहुँचाए और बिना कानून-व्यवस्था को ठेस पहुँचाए, प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी स्वतंत्रता का आनंद ले सके।

क्या इसका मतलब यह है कि कुछ ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें कानून एक आदमी की ज़िंदगी ले सकता है? यह तो अज़ीब बात है। क्या आपको कोई ऐसा मामला याद आता है?

जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार

स्वतंत्रता के सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारों में 'जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार' है। किसी भी नागरिक को कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन किये बिना उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को बिना कारण बताये गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता। गिरफ़्तार किये जाने पर उस व्यक्ति को अपने पसंदीदा वकील के माध्यम से अपना बचाव करने का अधिकार है। इसके अलावा, पुलिस के लिए यह आवश्यक है कि वह अभियुक्त को 24 घंटे के अंदर निकटतम न्यायाधीश के सामने पेश करे। न्यायाधीश ही इस बात का निर्णय करेगा कि गिरफ़्तार उचित है या नहीं।

इस अधिकार द्वारा किसी व्यक्ति के जीवन को मनमाने ढंग से समाप्त करने के विरुद्ध ही गारंटी नहीं मिलती बल्कि इसका दायरा और भी व्यापक है। सर्वोच्च न्यायालय के पिछले अनेक निर्णयों द्वारा इस अधिकार का दायरा

© NCERT not to be republished

बढ़ा है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार इसमें शोषण से मुक्त और मानवीय गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार अंतर्निहित है। न्यायालय ने माना कि 'जीवन के अधिकार' का अर्थ है कि व्यक्ति को आश्रय और आजीविका का भी अधिकार हो क्योंकि इसके बिना कोई व्यक्ति ज़िंदा नहीं रह सकता।

निवारक नज़रबंदी

सामान्यत: किसी व्यक्ति को तब गिरफ़्तार करते हैं जब उसने अपराध किया हो। पर इसके अपवाद भी हैं। कभी-कभी किसी व्यक्ति को इस आशंका पर भी गिरफ़्तार किया जा सकता है कि वह कोई गैर-कानूनी कार्य करने वाला है और फिर उसे वर्णित प्रक्रिया का पालन किये बिना ही कुछ समय के लिए जेल भेजा जा सकता है। इसे ही निवारक नज़रबंदी कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि सरकार को लगे कि कोई व्यक्ति देश की कानून-व्यवस्था या शांति और सुरक्षा के लिए खतरा बन सकता है, तो वह उसे बंदी बना सकती है। लेकिन निवारक नज़रबंदी अधिकतम 3 महीने के लिए ही हो सकती है। तीन महीने के बाद ऐसे मामले समीक्षा के लिए एक सलाहकार बोर्ड के समक्ष लाए जाते हैं।

प्रत्यक्ष रूप से निवारक नज़रबंदी सरकार के हाथ में असामाजिक तत्वों और राष्ट्र विद्रोही तत्वों से निपटने का एक हथियार है। लेकिन सरकार ने प्राय: इसका दुरुपयोग किया है। अनेक लोग यह मानते हैं कि इस कानून में कुछ ऐसे सुरक्षात्मक उपाय किए जाने चाहिए जिससे सामान्य नागरिकों के विरुद्ध अन्य किसी कारण से इसके दुरुपयोग को रोका जा सके। वास्तव में जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकारों तथा निवारक नज़रबंदी के प्रावधानों में परस्पर विरोधाभास है।

अन्य स्वतंत्रताएँ

आप देख सकते हैं कि 'स्वतंत्रता के अधिकार' के अंतर्गत कुछ और अधिकार भी हैं। पर इनमें से कोई भी अधिकार निरंकुश नहीं है। इनमें से प्रत्येक के प्रयोग पर सरकार कुछ प्रतिबंध लगा सकती है।

उदाहरण के तौर पर 'भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' पर कानून-व्यवस्था, शांति और नैतिकता के आधार पर प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं। सभा और सम्मेलन करने की स्वतंत्रता का प्रयोग करने पर यह शर्त है कि वह शांतिपूर्ण तथा बिना हथियारों के हो। सरकार किसी क्षेत्र में पाँच या पाँच से अधिक लोगों की सभा पर प्रतिबंध लगा सकती है। प्रशासन इस शक्ति का आसानी से दुरुपयोग कर सकता है। वह सरकार के किसी कार्य या नीति के

© NCERT not to be republished

विरुद्ध जनता को न्यायोचित विरोध-प्रदर्शन करने की अनुमति देने से मना कर सकता है। लेकिन जनता अपने अधिकारों के प्रति सजग और सतर्क हो और प्रशासन के ऐसे कार्यों का विरोध करे तो इसके दुरुपयोग की संभावना कम हो जाती है। संविधान सभा में भी कुछ सदस्यों ने अधिकारों को प्रतिबंधित करने पर अपना असंतोष जताया था।

मैं समझता हूँ कि इनमें से अनेक मौलिक अधिकारों को एक सिपाही के दृष्टिकोण से बनाया गया है। ··· आप देखेंगे कि काफी कम अधिकार दिए गए हैं और प्रत्येक अधिकार के बाद एक उपबंध जोड़ा गया है। लगभग प्रत्येक अनुच्छेद के बाद एक उपबंध है जो उन अधिकारों को पूरी तरह से वापस ले लेता है। ··· मौलिक अधिकारों की हमारी क्या अवधारणा होनी चाहिए? ··· हम उस प्रत्येक अधिकार को संविधान में पाना चाहते हैं जो हमारी जनता चाहती है।

सोमनाथ लाहिड़ी
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड III, पृष्ठ 404, 29 अप्रैल 1947

आरोपी या अभियुक्त के अधिकार

हमारा संविधान इसका भी प्रावधान करता है कि उन लोगों को भी पर्याप्त सुरक्षा मिले जिन पर विभिन्न अपराधों के आरोप हों। हम प्रायः ऐसा विश्वास कर लेते हैं कि जिस पर भी किसी अपराध का आरोप लगता है वह दोषी है। लेकिन जब तक न्यायालय किसी व्यक्ति को किसी अपराध का दोषी नहीं ठहराता तब तक उसे दोषी नहीं माना जा सकता। यह भी ज़रूरी है कि किसी अपराध के आरोपी को स्वयं को बचाने का समुचित अवसर मिलना चाहिये। न्यायालय में निष्पक्ष मुकदमे के लिए संविधान तीन अधिकारों की व्यवस्था करता है –

- किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से ज़्यादा सज़ा नहीं मिलेगी;
- कोई भी कानून किसी भी कार्य को पिछली तारीख से अपराध घोषित नहीं कर सकेगा; और
- किसी भी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए नहीं कहा जा सकेगा।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

क्या आप मानते हैं कि निम्न परिस्थितियाँ स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंधों की माँग करती हैं? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दें–

(क) शहर में सांप्रदायिक दंगों के बाद लोग शांति मार्च के लिए एकत्र हुए हैं।

(ख) दलितों को मंदिर में प्रवेश की मनाही है। मंदिर में जबर्दस्ती प्रवेश के लिए एक जलूस का आयोजन किया जा रहा है।

(ग) सैकड़ों आदिवासियों ने सड़क जाम कर दिया है। वे माँग कर रहे हैं कि कोई कारखाना बनाने के लिए ली गई उनकी जमीन वापस की जाए।

(घ) किसी जाति की पंचायत की बैठक यह तय करने के लिए बुलाई गई कि जाति से बाहर विवाह करने के लिए एक नवदंपति को क्या दंड दिया जाए।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

अपने देश में करोड़ों लोग गरीब, दलित–शोषित और वंचित हैं या लोगों के द्वारा उनका शोषण हो सकता है। ऐसे शोषण को हम अपने देश में 'बेगार' या 'बंधुआ–मज़दूरी' के रूप में जानते हैं। इसी प्रकार के एक शोषण में लोगों को 'दास' के रूप में खरीदा और बेचा जाता था। इन दोनों प्रकार के शोषणों पर संविधान प्रतिबंध लगाता है। पुराने समय में ज़मींदारों, सूदखोरों और अन्य धनी लोग 'बंधुआ मज़दूरी' करवाते थे। देश में अभी भी, खासतौर से भट्ठे के काम में, बंधुआ मज़दूरी करवाई जाती है। अब इसे अपराध घोषित कर दिया गया है और वह कानून द्वारा दंडनीय है।

इस फोटो में आप को किस मौलिक अधिकार का उल्लंघन दिखाई देता है?

© NCERT not to be republished

संविधान के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखाने, खदान या अन्य किसी खतरनाक काम में नियोजित नहीं किया जाएगा। इस प्रकार बाल श्रम को अवैध बना कर और शिक्षा को बच्चों का मौलिक अधिकार बनाकर 'शोषण के विरुद्ध संवैधानिक अधिकार' को और अर्थपूर्ण बनाया गया है।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

अपने संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पसंद के धर्म का पालन करने का अधिकार है। इस स्वतंत्रता को लोकतंत्र का प्रतीक माना जाता है। इतिहास गवाह है कि दुनिया के अनेक देशों के शासकों और राजाओं ने अपने-अपने देश की जनता को धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार नहीं दिया। शासकों से अलग धर्म को मानने वाले लोगों को या तो मार डाला गया या विवश किया गया कि वे शासकों द्वारा मान्य धर्म को स्वीकार कर लें। अत: लोकतंत्र में अपनी इच्छा के अनुसार धर्म पालन करने की स्वतंत्रता को हमेशा एक बुनियादी सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया है।

आस्था और प्रार्थना की स्वतंत्रता

भारत में प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने और उसका पालन करने का अधिकार है। धार्मिक स्वतंत्रता में अंत:करण की स्वतंत्रता भी समाहित है। इसका अर्थ है कि कोई व्यक्ति किसी भी धर्म को चुन सकता है या यह निर्णय भी ले सकता है कि वह किसी भी धर्म का पालन नहीं करेगा। धार्मिक स्वतंत्रता का यह भी अर्थ है कि सभी व्यक्तियों को अपने धर्म को अबाध रूप से मानने, उसके अनुसार आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा। लेकिन धार्मिक स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबंध भी हैं। लोक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के आधार पर सरकार धार्मिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकती है। धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार असीमित नहीं है। कुछ सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए सरकार धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है। उदाहरण के तौर पर सरकार ने सती प्रथा, एक से अधिक विवाह और मानव-बलि जैसी कुप्रथाओं पर प्रतिबंध के लिए अनेक कदम उठाए हैं। ऐसे प्रतिबंधों को धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार में हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता।

धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार पर नियंत्रण लगाने से विभिन्न धर्म के मानने वालों और सरकार के बीच अक्सर ही तनावपूर्ण स्थितियाँ पैदा होती हैं। जब भी किसी धार्मिक समुदाय के कुछ क्रियाकलापों पर सरकार नियंत्रण लगाती है, तो उस समुदाय के लोग यह महसूस करते हैं कि वह उनके धर्म में एक हस्तक्षेप है।

एक अन्य कारण से भी धार्मिक स्वतंत्रता राजनीतिक विवाद का विषय बन जाती है। संविधान ने सभी को अपने धर्म का प्रचार करने की स्वतंत्रता दी है। इसमें लोगों को एक

© NCERT not to be republished

धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन के लिए मनाने का अधिकार भी शामिल है। लेकिन कुछ लोग धर्म परिवर्तन का विरोध करते हैं। उनका मानना है कि धर्मांतरण भय या लालच के आधार पर कराए जाते हैं। संविधान भी जबरन धर्म-परिवर्तन की इज़ाज़त नहीं देता। वह हमें केवल अपने धर्म के बारे में सूचनाएँ प्रसारित करने का अधिकार देता है जिससे हम दूसरों को अपने धर्म की ओर आकर्षित कर सकें।

सभी धर्मों की समानता

विभिन्न धर्मावलंबियों का देश होने के कारण यह ज़रूरी है कि सरकार विभिन्न धर्मों के साथ समानता का बर्ताव करे। इसका अर्थ यह भी है कि सरकार किसी विशेष धर्म का पक्ष नहीं लेगी। भारत का कोई राजकीय धर्म नहीं है। भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, न्यायाधीश या अन्य किसी सार्वजनिक पद पर कार्य करने के लिए हमें किसी धर्म-विशेष का सदस्य होना ज़रूरी नहीं है। 'समानता के अधिकार' के अंतर्गत भी हमने देखा कि सभी नागरिकों को इस बात की गारंटी दी गई है कि सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के संबंध में सरकार धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी। राज्य द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थाओं में न तो किसी धर्म का प्रचार किया जाएगा, न ही कोई धार्मिक शिक्षा दी जाएगी और न ही उसमें प्रवेश के लिए किसी धर्म को वरीयता दी जाएगी। इन प्रावधानों से धर्म निरपेक्षता को जीवन और बल मिलता है।

खुद करें — खुद सीखें

अपने गाँव या शहर में होने वाले सार्वजनिक धार्मिक गतिविधियों की सूची बनाएँ।

इनमें से कौन-कौन-सी गतिविधियाँ धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग दिखलाती हैं?

इस पर चर्चा करें कि यदि आपके क्षेत्र में लोगों को यह अधिकार नहीं होता, तो क्या होता?

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार

जब हम भारतीय समाज की बात करते हैं तो हमारे मन में विविधता की छवि उभरती है। भारतीय समाज कोई समरूप समाज नहीं है वरन् उसमें काफी विविधता है। ऐसे विविधता भरे समाज में कुछ समुदाय छोटे और कुछ बड़े हैं। क्या ऐसी स्थिति में अल्पसंख्यक समुदाय को बहुसंख्यक समुदाय की संस्कृति स्वीकार करनी पड़ेगी?

हमारा संविधान मानता है कि 'विविधता' हमारे समाज की मज़बूती है। अत: अल्पसंख्यकों का अपनी संस्कृति को बनाये रखने का अधिकार भी एक मौलिक अधिकार

© NCERT not to be republished

बहुसंख्यकों पर एक गंभीर उत्तरदायित्व है कि वे देखें कि अल्पसंख्यक सुरक्षित महसूस करें। ··· केवल एक धर्मनिरपेक्ष शासन में ही अल्संख्यक सुरक्षित रहेंगे। उनके लिए राष्ट्रवादी होना लाभकारी है। बहुसंख्यकों को अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण का दिखावा नहीं करना चाहिये। ··· उन्हें स्वयं को अल्पसंख्यकों की स्थिति में रखकर उनकी आशंकाओं को समझना चाहिये। सुरक्षा की सभी माँगे उसी आशंका पर आधारित हैं, जो अल्पसंख्यकों के मन में अपनी भाषा, लिपि और नौकरियों के अवसर के संबंध में हैं।

सरदार हुकुम सिंह
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड VIII, पृष्ठ 322, 26 मई 1949

है। किसी समुदाय को केवल धर्म के आधार पर नहीं बल्कि भाषा और संस्कृति के आधार पर भी अल्पसंख्यक माना जाता है। अल्पसंख्यक वह समूह है जिनकी अपनी एक भाषा या धर्म होता है और देश के किसी एक भाग में या पूरे देश में संख्या के आधार पर वे किसी अन्य समूह से छोटा है, ऐसे अल्पसंख्यक समूहों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने और उसे विकसित करने का अधिकार है।

भाषाई या धार्मिक अल्पसख्यंक अपने शिक्षण संस्थान खोल सकते हैं। ऐसा करके वे अपनी संस्कृति को सुरक्षित और विकसित कर सकते हैं। शिक्षण संस्थाओं को वित्तीय अनुदान देने के मामले में सरकार इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगी कि उस शिक्षण संस्थान का प्रबंध किसी अल्पसंख्यक समुदाय के हाथ में है।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार

इस बात से हर-कोई सहमत होगा कि हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों की सूची बड़ी आकर्षक है। लेकिन अधिकारों की विस्तृत सूची देना ही काफी नहीं। कोई ऐसा तरीका होना चाहिए जिससे उन्हें व्यवहार में लाया जा सके और उल्लंघन होने पर अधिकारों की रक्षा की जा सके।

© NCERT not to be republished

'संवैधानिक उपचारों का अधिकार' वह साधन है जिसके द्वारा ऐसा किया जा सकता है। डॉ. अंबेडकर ने इस अधिकार को 'संविधान का हृदय और आत्मा' की संज्ञा दी। इसके अंतर्गत हर नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन किए जाने पर सीधे उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए सरकार को आदेश और निर्देश दे सकते हैं। न्यायालय कई प्रकार के विशेष आदेश जारी करते हैं जिन्हें प्रादेश या रिट कहते हैं।

- **बंदी प्रत्यक्षीकरण** – बंदी प्रत्यक्षीकरण के द्वारा न्यायालय किसी गिरफ़्तार व्यक्ति को न्यायालय के सामने प्रस्तुत करने का आदेश देता है। यदि गिरफ़्तारी का तरीका या कारण गैरकानूनी या असंतोषजनक हो, तो न्यायालय गिरफ़्तार व्यक्ति को छोड़ने का आदेश दे सकता है।
- **परमादेश** – यह आदेश तब ज़ारी किया जाता है जब न्यायालय को लगता है कि कोई सार्वजनिक पदाधिकारी अपने कानूनी और संवैधानिक दायित्वों का पालन नहीं कर रहा है और इससे किसी व्यक्ति का मौलिक अधिकार प्रभावित हो रहा है।
- **निषेध आदेश** – जब कोई निचली अदालत अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करके किसी मुकदमे की सुनवाई करती है तो ऊपर की अदालतें (उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय) उसे ऐसा करने से रोकने के लिए 'निषेध आदेश' ज़ारी करती है।
- **अधिकार पृच्छा** – जब न्यायालय को लगता है कि कोई व्यक्ति ऐसे पद पर नियुक्त हो गया है जिस पर उसका कोई कानूनी हक नहीं है तब न्यायालय 'अधिकार पृच्छा आदेश' के द्वारा उसे उस पद पर कार्य करने से रोक देता है।
- **उत्प्रेषण रिट** – जब कोई निचली अदालत या सरकारी अधिकारी बिना अधिकार के कोई कार्य करता है, तो न्यायालय उसके समक्ष विचाराधीन मामले को उससे लेकर उत्प्रेषण द्वारा उसे ऊपर की अदालत या अधिकारी को हस्तांतरित कर देता है।

बाद में इन अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायपालिका के अलावा कुछ और संरचनाओं का भी निर्माण किया गया। आपने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक

मैं अपने मुहल्ले में तो अल्पसंख्यक हूँ पर शहर में बहुसंख्यक। भाषा के हिसाब से तो अल्पसंख्यक हूँ लेकिन धर्म के लिहाज से मैं बहुसंख्यक हूँ। क्या हम सभी अल्पसंख्यक नहीं हैं?

© NCERT not to be republished

आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग आदि के बारे में सुना होगा। ये संस्थाएँ क्रमशः अल्पसंख्यकों, महिलाओं और दलितों के अधिकारों की रक्षा करती हैं। इसके अतिरिक्त, मौलिक अधिकारों और अन्य अधिकारों की रक्षा करने के लिए कानून द्वारा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का भी गठन किया गया है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

किसी भी संविधान द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों की असली पहचान तब होती है जब उन्हें लागू किया जाता है। समाज के गरीब, अशिक्षित और कमज़ोर तबके के लोगों को अपने अधिकारों को प्रयोग करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़ (पी.यू.सी.एल.) या पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पी.यू.डी.आर.) जैसी संस्थाएँ अधिकारों के हनन के विरुद्ध चौकसी करती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में वर्ष 1993 में सरकार ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में सर्वोच्च न्यायालय का एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश, किसी उच्च न्यायालय का एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश तथा मानवाधिकारों के संबंध में ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले दो और सदस्य होते हैं।

मानवाधिकारों के उल्लंघन की शिकायतें मिलने पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग स्वयं अपनी पहल पर या किसी पीड़ित व्यक्ति की याचिका पर जाँच कर सकता है। जेलों में बंदियों की स्थिति का अध्ययन करने जा सकता है; मानवाधिकार के क्षेत्र में शोध कर सकता है या शोध को प्रोत्साहित कर सकता है।

आयोग को प्रतिवर्ष हजारों शिकायतें मिलती हैं। इनमें से अधिकतर हिरासत में मृत्यु, हिरासत के दौरान बलात्कार, लोगों के गायब होने, पुलिस की ज़्यादतियों, कार्यवाही न किये जाने, महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार आदि से संबंधित होती हैं। मानवाधिकार आयोग का सबसे प्रभावी हस्तक्षेप पंजाब में युवकों के गायब होने तथा गुजरात दंगों के मामले में जाँच के रूप में रहा। आयोग को स्वयं मुकदमा सुनने का अधिकार नहीं है। यह सरकार या न्यायालय को अपनी जाँच के आधार पर मुकदमें चलाने की सिफारिश कर सकता है।

अधिक जानकारी के लिए, देखें www.nhrc.nic.in

© NCERT not to be republished

राज्य के नीति-निर्देशक तत्व

संविधान निर्माताओं को पता था कि स्वतंत्र भारत को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। इसमें सभी नागरिकों में समानता लाना और सबका कल्याण करना सबसे बड़ी चुनौती थी। उन लोगों ने यह भी सोचा कि इन समस्याओं को हल करने के लिए कुछ नीतिगत निर्देश ज़रूरी हैं। लेकिन इसके साथ ही वे इन नीतियों को भावी सरकारों के लिए बाध्यकारी भी नहीं बनाना चाहते थे।

संविधान में कुछ निर्देशक तत्वों का समावेश तो किया गया लेकिन उन्हें न्यायालय के माध्यम से लागू करवाने की व्यवस्था नहीं की गई। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि सरकार किसी निर्देश को लागू नहीं करती तो हम न्यायालय में जाकर यह माँग नहीं कर सकते कि उसे लागू कराने के लिए न्यायालय सरकार को आदेश दे। इसीलिए कहा जाता है कि नीति निर्देशक तत्व 'वाद योग्य नहीं' हैं। अर्थ यह है कि यह संविधान का एक हिस्सा है जिसे न्यायपालिका द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता। संविधान निर्माताओं का मानना था कि इन निर्देशक तत्वों के पीछे जो नैतिक शक्ति है वह सरकार को बाध्य करेगी कि सरकार नीति निर्देशक तत्वों को गंभीरता से ले। इसके अलावा वे ऐसा भी समझते थे कि जनता उन्हें लागू करने की ज़िम्मेदारी भावी सरकारों पर डालेगी। अत: संविधान में ऐसी नीतियों की एक निर्देशक सूची रखी गई है। निर्देशों की उसी सूची को राज्य के नीति-निर्देशक तत्व कहते हैं।

नीति-निर्देशक तत्व क्या हैं?

नीति-निर्देशक तत्वों की सूची में तीन प्रमुख बातें हैं –

- वे लक्ष्य और उद्देश्य जो एक समाज के रूप में हमें स्वीकार करने चाहिए;
- वे अधिकार जो नागरिकों को मौलिक अधिकारों के अलावा मिलने चाहिए, और
- वे नीतियाँ जिन्हें सरकार को स्वीकार करना चाहिए।

नीति-निर्देशक तत्वों को देखने से आपको संविधान निर्माताओं की 'भारत की कल्पना' का आभास होगा।

समय-समय पर सरकार ने कुछ नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने का प्रयास किया। अनेक ज़मींदारी उन्मूलन कानून, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, कई फैक्ट्री-अधिनियम, न्यूनतम मज़दूरी निर्धारण, कुटीर और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के उन्नयन के लिए आरक्षण आदि इन प्रयासों को दर्शाते हैं। नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने के प्रयास में शिक्षा का अधिकार, पूरे देश में पंचायती-राज व्यवस्था लागू

© NCERT not to be republished

करना, रोज़गार गारंटी योजना के अंतर्गत काम का सीमित अधिकार, स्कूली बच्चों के लिए दोपहर के भोजन की योजना आदि सम्मिलित हैं।

नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्य

- वर्ष 1976 में संविधान का 42वाँ संशोधन किया गया। अन्य प्रावधानों के अलावा इस संशोधन से संविधान में नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों की एक सूची का समावेश किया गया जिसमें कुल दस कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया। लेकिन इन्हें लागू करने के संबंध में संविधान मौन है।
- नागरिक के रूप में हमें अपने संविधान का पालन करना चाहिए, देश की रक्षा करनी चाहिए, सभी नागरिकों में भाईचारा बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए तथा पर्यावरण की रक्षा करनी चाहिए।
- परंतु यह ध्यान देने की बात है कि संविधान मौलिक कर्त्तव्यों के अनुपालन के आधार पर या उनकी शर्त पर हमें मौलिक अधिकार नहीं देता। इस दृष्टि से संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों के समावेश से हमारे मौलिक अधिकारों पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ा।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

ऐसा अनुमान है कि भारत में लगभग 30 लाख लोग शहरों में बेघर हैं। इनमें से पाँच प्रतिशत लोगों के लिए रात में सोने की जगह भी नहीं है। इनमें सैकड़ों बूढ़े और बीमार बेघर लोगों की जाड़े में शीतलहर से मृत्यु हो जाती है। उन्हें 'निवास का प्रमाण' न दे पाने के कारण राशन कार्ड या मतदाता पहचान पत्र नहीं मिल पाते। इसके अभाव में उन्हें ज़रूरतमंद मरीजों के रूप में सरकारी मदद भी नहीं मिल पाती। इनमें एक बड़ी संख्या में लोग दिहाड़ी मज़दूर हैं जिन्हें बहुत कम मज़दूरी मिलती है। वे मज़दूरी की तलाश में देश के विभिन्न हिस्सों से शहरों में आते हैं।

आप इन तथ्यों के आधार पर 'संवैधानिक उपचारों के अधिकार' के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को एक याचिका भेंजे। आपकी याचिका में निम्न दो बातों का उल्लेख होना चाहिए –

(क) इन बेघर लोगों के कौन-से मौलिक अधिकार का उल्लंघन हो रहा है?

(ख) आप सर्वोच्च न्यायालय से किस प्रकार का आदेश देने की प्रार्थना करेंगे?

© NCERT not to be republished

नीति-निर्देशक तत्वों और मौलिक अधिकारों में संबंध

मौलिक अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों को एक-दूसरे के पूरक के रूप में देखा जा सकता है। जहाँ मौलिक अधिकार सरकार के कुछ कार्यों पर प्रतिबंध लगाते हैं वहीं नीति-निर्देशक तत्व उसे कुछ कार्यों को करने की प्रेरणा देते हैं। मौलिक अधिकार खास

नीति-निर्देशक तत्व

उद्देश्य

लोगों का कल्याण; सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय

जीवन स्तर ऊँचा उठाना; संसाधनों का समान वितरण

अंतर्राष्ट्रीय शांति को बढ़ावा

नीतियाँ

समान नागरिक संहिता;
मद्यपान निषेध;
घरेलू उद्योगों को बढ़ावा;
उपयोगी पशुओं को मारने पर रोक;
ग्राम पंचायतों को प्रोत्साहन

ऐसे अधिकार जिनके लिए न्यायालय में दावा नहीं किया जा सकता

पर्याप्त जीवन यापन;

महिलाओं और पुरुषों को समान काम की समान मज़दूरी

आर्थिक शोषण के विरुद्ध अधिकार

काम का अधिकार

छह वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए प्रारंभिक बाल्यावस्था देख-रेख और शिक्षा

मुझे बताओ कि संविधान में अच्छी-अच्छी बातें कहने का क्या मतलब यदि उसे किसी न्यायालय में लागू ही नहीं किया जा सकता?

© NCERT not to be republished

तौर से व्यक्ति के अधिकारों को संरक्षित करते हैं, पर नीति-निर्देशक तत्व पूरे समाज के हित की बात करते हैं। लेकिन कभी-कभी जब सरकार नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने का प्रयास करती है, तो वे नागरिकों के मौलिक अधिकारों से टकरा सकते हैं।

यह समस्या तब पैदा हुई जब सरकार ने ज़मींदारी उन्मूलन कानून बनाने का फ़ैसला किया। इसका विरोध इस आधार पर किया गया कि उससे संपत्ति के मौलिक अधिकार का हनन होता है। लेकिन यह सोचकर कि सामाजिक आवश्यकताएँ वैयक्तिक हित से ऊपर हैं, सरकार ने नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने के लिए संविधान का संशोधन किया।

इससे एक लंबी कानूनी लड़ाई शुरू हुई। कार्यपालिका और न्यायपालिका ने इस पर परस्पर विरोधी दृष्टिकोण अपनाया। सरकार की मान्यता थी कि नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। इसके पीछे यह धारणा थी कि लोक कल्याण के मार्ग में अधिकार बाधक हैं। दूसरी ओर न्यायालय की यह मान्यता थी कि मौलिक अधिकार इतने महत्वपूर्ण और पावन हैं कि नीति-निर्देशक तत्वों को लागू करने के लिए भी उन्हें प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता।

संपत्ति का अधिकार

मौलिक अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों के मध्य संबंधों पर उठे विवाद के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण था मूल संविधान में संपत्ति अर्जन, स्वामित्व और संरक्षण का मौलिक अधिकार दिया गया था। लेकिन संविधान में स्पष्ट कहा गया था कि सरकार लोक-कल्याण के लिए संपत्ति का अधिग्रहण कर सकती है। 1950 से ही सरकार ने अनेक ऐसे कानून बनाए जिससे संपत्ति के अधिकार पर प्रतिबंध लगा। मौलिक अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों के मध्य विवाद के केंद्र में यही अधिकार था। आखिरकार 1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में 'संपत्ति के अधिकार' को 'संविधान के मूल ढाँचे' का तत्व नहीं माना और कहा कि संसद को संविधान का संशोधन करके इसे प्रतिबंधित करने का अधिकार है। 1978 में जनता पार्टी की सरकार ने 44वें संविधान संशोधन के द्वारा संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से निकाल दिया और संविधान के अनुच्छेद 300 (क) के अंतर्गत उसे एक सामान्य कानूनी अधिकार बना दिया।

आपकी राय में 'संपत्ति के अधिकार' को मौलिक अधिकार से कानूनी अधिकार बनाने से क्या फर्क पड़ता है?

© NCERT not to be republished

इसने एक और भी जटिल वाद-विवाद को जन्म दिया। वह संविधान के संशोधन से संबंधित था। सरकार का मत था कि संसद संविधान के किसी भी अंश या प्रावधान में संशोधन कर सकती है। न्यायपालिका का कहना था कि संसद कोई ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो। यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केशवानन्द भारती मुकदमे में दिए गए एक महत्वपूर्ण निर्णय से समाप्त हुआ। इसमें निर्णय देते हुए न्यायालय ने यह कहा कि संविधान की कुछ 'मूल-ढाँचागत' विशेषताएँ हैं और संसद उनमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। इसे हम नवें अध्याय 'संविधान : एक जीवंत दस्तावेज़' में विस्तार से पढ़ेंगे।

भ्रूण हत्या और यौन उत्पीड़न के खिलाफ मुहिम

आठ मार्च से जिला स्तर पर संवेदना परामर्श केंद्र खोलने का एलान

Dalit family finally gets some respite from court

Sessions court sends the case back to magistrate with direction to pass a fresh order

Special Correspondent

• Verdict of ACJM quashed

• Family alleges persecution by high caste people

वार्ड सदस्य खातून को दबंगों ने कालिख पोत कर घुमाया

स्त्री भ्रूण हत्याएं रोकी जाएं : पाटील

'डायन' कह कर यातना देने वालों को अब खैर नहीं

बाल विवाह के खिलाफ आवाज उठाई दो बहादुर बच्चियों ने

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- दक्षिण अफ्रीका के संविधान में अधिकारों के घोषणापत्र और भारतीय संविधान में दिए नीति-निर्देशक तत्वों को पढ़ें। दोनों सूचियों में आपको कौन-सी बातें एक समान लगती हैं?
- दक्षिण अफ्रीका के संविधान ने इन्हें अधिकारों के घोषणापत्र में क्यों रखा?
- यदि आपको एक नए राष्ट्र के लिए संविधान बनाना हो, तो उसके लिए आप क्या सुझाएँगे?

निष्कर्ष

महाराष्ट्र के एक क्रांतिकारी समाज सुधारक ज्योतिबा राव फुले (1827-1890) की रचनाओं में हमें सर्वप्रथम यह विचार प्राप्त होता है कि अधिकारों में स्वतंत्रता और समानता दोनों ही निहित हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान यह विचार और स्पष्ट हुआ तथा इस संवैधानिक अधिकारों के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। हमारे संविधान में इस लंबी परंपरा को मौलिक अधिकारों की सूची के रूप में देखा जा सकता है। 1950 से न्यायपालिका ने अधिकारों के महत्त्वपूर्ण संरक्षक की भूमिका निभाई है।

न्यायिक व्याख्याओं ने अनेक अधिकारों का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है। हमारी सरकार और प्रशासन इसी परिप्रेक्ष्य में काम करते हैं। अधिकार सरकार के कार्यों की सीमा तय करते हैं और देश में लोकतांत्रिक शासन सुनिश्चित करते हैं।

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. निम्नलिखित प्रत्येक कथन के बारे में बताएँ कि वह सही है या गलत
   (क) अधिकार-पत्र में किसी देश की जनता को हासिल अधिकारों का वर्णन रहता है।
   (ख) अधिकार-पत्र व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करता है।
   (ग) विश्व के हर देश में अधिकार-पत्र होता है।

2. निम्नलिखित में कौन मौलिक अधिकारों का सबसे सटीक वर्णन है?
   (क) किसी व्यक्ति को प्राप्त समस्त अधिकार
   (ख) कानून द्वारा नागरिक को प्रदत्त समस्त अधिकार
   (ग) संविधान द्वारा प्रदत्त और सुरक्षित समस्त अधिकार
   (घ) संविधान द्वारा प्रदत्त वे अधिकार जिन पर कभी प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता।

3. निम्नलिखित स्थितियों को पढ़ें। प्रत्येक स्थिति के बारे में बताएँ कि किस मौलिक अधिकार का उपयोग या उल्लंघन हो रहा है और कैसे?
   (क) राष्ट्रीय एयरलाइन के चालक-परिचालक दल (Cabin-Crew) के ऐसे पुरुषों को जिनका वजन ज़्यादा है - नौकरी में तरक्की दी गई लेकिन उनकी ऐसी महिला सहकर्मियों को, दंडित किया गया जिनका वजन बढ़ गया था।
   (ख) एक निर्देशक एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म बनाता है जिसमें सरकारी नीतियों की आलोचना है।
   (ग) एक बड़े बाँध के कारण विस्थापित हुए लोग अपने पुनर्वास की माँग करते हुए रैली निकालते हैं।
   (घ) आंध्र-सोसायटी आंध्र प्रदेश के बाहर तेलुगु माध्यम के विद्यालय चलाती है।

4. निम्नलिखित में कौन सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की सही व्याख्या है?
   (क) शैक्षिक-संस्था खोलने वाले अल्पसंख्यक वर्ग के ही बच्चे इस संस्थान में पढ़ाई कर सकते हैं।
   (ख) सरकारी विद्यालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अल्पसंख्यक-वर्ग के बच्चों को उनकी संस्कृति और धर्म-विश्वासों से परिचित कराया जाए।
   (ग) भाषाई और धार्मिक-अल्पसंख्यक अपने बच्चों के लिए विद्यालय खोल सकते हैं और उनके लिए इन विद्यालयों को आरक्षित कर सकते हैं।
   (घ) भाषाई और धार्मिक-अल्पसंख्यक यह माँग कर सकते हैं कि उनके बच्चे उनके द्वारा संचालित शैक्षणिक-संस्थाओं के अतिरिक्त किसी अन्य संस्थान में नहीं पढ़ेंगे।

5. इनमें कौन-मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है और क्यों?
   (क) न्यूनतम देय मज़दूरी नहीं देना।
   (ख) किसी पुस्तक पर प्रतिबंध लगाना।

© NCERT not to be republished

(ग) 9 बजे रात के बाद लाऊड-स्पीकर बजाने पर रोक लगाना।
(घ) भाषण तैयार करना।

6. गरीबों के बीच काम कर रहे एक कार्यकर्त्ता का कहना है कि गरीबों को मौलिक अधिकारों की ज़रूरत नहीं है। उनके लिए ज़रूरी यह है कि नीति-निर्देशक सिद्धांतों को कानूनी तौर पर बाध्यकारी बना दिया जाए। क्या आप इससे सहमत हैं? अपने उत्तर का कारण बताएँ।

7. अनेक रिपोर्टों से पता चलता है कि जो जातियाँ पहले झाड़ू देने के काम में लगी थीं उन्हें अब भी मज़बूरन यही काम करना पड़ रहा है। जो लोग अधिकार-पद पर बैठे हैं वे इन्हें कोई और काम नहीं देते। इनके बच्चों को पढ़ाई-लिखाई करने पर हतोत्साहित किया जाता है। इस उदाहरण में किस मौलिक-अधिकार का उल्लंघन हो रहा है।

8. एक मानवाधिकार-समूह ने अपनी याचिका में अदालत का ध्यान देश में मौजूद भूखमरी की स्थिति की तरफ खींचा। भारतीय खाद्य-निगम के गोदामों में 5 करोड़ टन से ज़्यादा अनाज भरा हुआ था। शोध से पता चलता है कि अधिकांश राशन-कार्डधारी यह नहीं जानते कि उचित-मूल्य की दुकानों से कितनी मात्रा में वे अनाज खरीद सकते हैं। मानवाधिकार समूह ने अपनी याचिका में अदालत से निवेदन किया कि वह सरकार को सार्वजनिक-वितरण-प्रणाली में सुधार करने का आदेश दे।
(क) इस मामले में कौन-कौन से अधिकार शामिल हैं? ये अधिकार आपस में किस तरह जुड़े हैं?
(ख) क्या ये अधिकार जीवन के अधिकार का एक अंग हैं?

9. इस अध्याय में उद्धृत सोमनाथ लाहिड़ी द्वारा संविधान-सभा में दिए गए वक्तव्य को पढ़ें। क्या आप उनके कथन से सहमत हैं? यदि हाँ तो इसकी पुष्टि में कुछ उदाहरण दें। यदि नहीं तो उनके कथन के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत करें।

10. आपके अनुसार कौन-सा मौलिक अधिकार सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है? इसके प्रावधानों को संक्षेप में लिखें और तर्क देकर बताएँ कि यह क्यों महत्त्वपूर्ण है?

© NCERT not to be republished

अध्याय तीन

चुनाव और प्रतिनिधित्व

11103CH03

परिचय

क्या आपने कभी शतरंज खेला है? यदि उसमें काला घोड़ा ढाई घर चलने के बजाय सीधा चलने लगे तो क्या होगा? या, क्रिकेट के खेल में यदि अंपायर न हो तो क्या होगा? प्रत्येक खेल में हमें कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। उन नियमों को बदल दिया जाय तो खेल का परिणाम भी बदल जायेगा। इसी तरह, प्रत्येक खेल में एक निष्पक्ष अंपायर होना चाहिए जिसके निर्णयों को सभी खिलाड़ी स्वीकार कर लें। खेल शुरू करने से पहले ही हमें नियमों और अंपायर के बारे में सहमति बनानी पड़ेगी। जो खेल के बारे में सत्य है वही चुनाव के बारे में भी सत्य है। चुनाव संपन्न कराने के भिन्न-भिन्न नियम और व्यवस्थाएँ हैं। चुनाव का परिणाम इस पर निर्भर करता है कि हमने कैसे नियम बनाये हैं। हमें चुनावों को निष्पक्ष ढंग से कराने के लिए एक मशीनरी भी चाहिये। चूँकि ये दोनों ही निर्णय चुनावी राजनीति का खेल शुरू होने से पहले ही लिए जाने चाहिये, इसलिए इन्हें सरकार पर नहीं छोड़ा जा सकता। अतः चुनाव के बारे में इन मूलभूत निर्णयों को लोकतांत्रिक देश के संविधान में लिख दिया जाता है।

इस अध्याय में हम चुनाव और प्रतिनिधित्व के बारे में संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन करेंगे। अपने संविधान में जिस चुनाव पद्धति को स्वीकार किया गया है हम उसके महत्त्व और चुनाव कराने की निष्पक्ष मशीनरी से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों के आशय पर प्रकाश डालेंगे। इस संबंध में संविधान के प्रावधानों को संशोधित करने के लिए जो सुझाव दिये गये हैं हम उन्हें भी देखेंगे। इस अध्याय को पढ़ने से आपको निम्नलिखित बातों का पता चलेगा –

- *चुनाव की विभिन्न विधियाँ;*
- *अपने देश की चुनाव-व्यवस्था की विशेषताएँ;*
- *स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के प्रावधानों का महत्त्व; और*
- *चुनाव सुधार पर होने वाली बहस।*

© NCERT not to be republished

चुनाव और लोकतंत्र

आइये हम अपने से ही चुनाव और प्रजातंत्र के बारे में दो प्रश्न पूछ कर अध्याय की शुरुआत करें।

- क्या बिना चुनाव के लोकतंत्र कायम रह सकता है?
- क्या बिना लोकतंत्र के चुनाव हो सकता है?

पिछली कक्षाओं में हमने जो कुछ भी पढ़ा उसके उदाहरणों का प्रयोग करते हुए हमें इन प्रश्नों पर चर्चा करनी चाहिये।

कार्टून बूझें

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

17 फरवरी 1957

कहा जाता है कि चुनाव लोकतंत्र का त्यौहार है लेकिन इस कार्टून में उसे एक आफत के रूप में दिखाया गया है। क्या यह लोकतंत्र के लिए अच्छा है?

पहला प्रश्न हमें एक बड़े लोकतंत्र में चुनाव की आवश्यकता के बारे में याद दिलाता है। कोई भी निर्णय लेने में सभी नागरिक प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते। अतः लोग अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं। इसलिए, चुनाव महत्त्वपूर्ण हो जाता है। हम जब भी भारतीय लोकतंत्र के बारे में सोचते हैं तो सहज ही हमारा ध्यान पिछले चुनावों पर चला जाता है। आज चुनाव पूरी लोकतांत्रिक प्रक्रिया के जाने-पहचाने प्रतीक हो गये हैं। हम प्रायः प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में अंतर करते हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में नागरिक रोजमर्रा के फ़ैसलों और सरकार चलाने में सीधे भाग लेते हैं। प्राचीन यूनान के नगर-राज्य प्रत्यक्ष लोकतंत्र के उदाहरण माने जाते हैं। अनेक लोगों की स्थानीय सरकारें, खास तौर से ग्राम सभाएँ, प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के निकटतम उदाहरण हैं। लेकिन जब लाखों और करोड़ों लोगों को निर्णय लेना हो, तो इस प्रकार के प्रत्यक्ष लोकतंत्र को व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। इसलिए जनता के शासन का अर्थ सामान्यतः जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा चलने वाले शासन से है।

2019-2020

ऐसी व्यवस्था में नागरिक अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं जो देश के शासन और प्रशासन को चलाने में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। इन प्रतिनिधियों को चुनने की विधि को चुनाव या निर्वाचन कहते हैं। अत: महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने और प्रशासन चलाने में नागरिकों की सीमित भूमिका है। वे इन नीतियों के निर्माण में बहुत सक्रिय रूप से सम्मिलित नहीं होते। नागरिक उसमें अप्रत्यक्ष रूप से, अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से, सम्मिलित होते हैं। जिस व्याख्या में सभी प्रमुख निर्णय निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से लिए जाएँ उसमें प्रतिनिधियों के निर्वाचन का तरीका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

दूसरा प्रश्न हमें इस बात की याद दिलाता है कि सभी चुनाव लोकतांत्रिक नहीं होते। बहुत सारे गैर-लोकतांत्रिक देशों में भी चुनाव होते हैं। वास्तव में गैर-लोकतांत्रिक शासक स्वयं को लोकतांत्रिक साबित करने के लिए बहुत आतुर रहते हैं। इसके लिए वे चुनावों को ऐसे ढंग से कराते हैं कि उनके शासन को कोई खतरा न हो। क्या आप ऐसे कुछ गैर-लोकतांत्रिक चुनावों के उदाहरण दे सकते हैं? आपकी राय में कौन-सी बात एक लोकतांत्रिक चुनाव को एक गैर-लोकतांत्रिक चुनाव से अलग करती है? किसी देश में चुनावों को लोकतांत्रिक ढंग से संपन्न कराना सुनिश्चित करने के लिए क्या करना चाहिये?

इसी बिंदु पर संविधान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। एक लोकतांत्रिक देश का संविधान चुनावों के लिए कुछ मूलभूत नियम बनाता है और इस संबंध में विस्तृत नियम-कानून बनाने का काम विधायिका पर छोड़ देता है। ये मूलभूत नियम सामान्यत: हमें बताते हैं कि –

- कौन मत देने के लिए योग्य है?
- कौन चुनाव लड़ने के लिए योग्य है?
- कौन चुनाव की देख-रेख करेगा?
- मतदाता अपना प्रतिनिधि कैसे चुनेंगे?
- मतगणना कैसे होगी और प्रतिनिधियों का चुनाव कैसे होगा?

अन्य लोकतांत्रिक संविधानों की भाँति भारत का संविधान भी इन सभी प्रश्नों का उत्तर देता है। आप देख सकते है कि इसमें पहले तीन प्रश्नों का लक्ष्य एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव है, जिसे लोकतांत्रिक चुनाव कहा जा सके। अंतिम दो प्रश्नों का लक्ष्य न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व

इन नियमों को संविधान में लिखने की क्या ज़रूरत है? इन्हें संसद क्यों नहीं तय करती? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि ये नियम चुनाव से पहले सभी दल मिलकर तय करें?

© NCERT not to be republished

है। इस अध्याय में हम चुनाव के बारे में संवैधानिक प्रावधानों के इन दो पहलुओं की चर्चा करेंगे।

खुद करें— खुद सीखें

भारत तथा किसी अन्य देश के चुनावों के संबंध में अखबारों की खबरों को काटें। उन कतरनों को निम्न वर्गों में बाँटें –

(क) प्रतिनिधित्व की व्यवस्था।

(ख) मतदाताओं की योग्यता।

(ग) चुनाव आयोग की भूमिका।

यदि आपके पास इंटरनेट है, तो आप भारत निर्वाचन आयोग, की वेबसाइट, https://eci.gov.in और 'ACE प्रोजेक्ट, Electoral Knowledge Network' की वेबसाइट, http://aceproject.org पर जाएँ और इन विषयों पर चार देशों के बारे में सूचनाएँ एकत्र करें।

भारत में चुनाव व्यवस्था

ऊपर आपने चुनावों की विभिन्न विधियों या व्यवस्थाओं पर गौर किया होगा। आपको आश्चर्य भी हुआ होगा कि यह सब क्या है? आपने, चुनावों के समय चुनाव-प्रचार के लिए अपनाये जाने वाले विभिन्न तरीकों के बारे में पढ़ा होगा। लेकिन चुनाव के विभिन्न तरीके क्या हैं? चुनाव संचालन करने की एक व्यवस्था है। इसके लिए प्राधिकार (authorities) और नियम भी हैं जो बताते हैं कि क्या करें और क्या न करें। क्या चुनाव व्यवस्था का यही अर्थ है? आपको आश्चर्य हो सकता है कि क्यों संविधान में यह लिखने की ज़रूरत पड़ी कि मतगणना कैसे होगी और प्रतिनिधि कैसे चुने जायेंगे। क्या यह स्वयं ही स्पष्ट नहीं? लोग जाते हैं और वोट देते हैं। जिस प्रत्याशी को अधिकतम वोट मिलते हैं, वह चुना जाता है। पूरे विश्व में ऐसे ही चुनाव होता है। हमें इसके बारे में क्यों सोचना चाहिये?

हमें इसलिए सोचना चाहिये क्योंकि यह प्रश्न उतना सरल नहीं जितना हमें लगता है। हम अपनी चुनाव व्यवस्था में ही इतना लीन हैं कि हमें लगता है कि कोई और तरीका हो ही नहीं सकता। लोकतांत्रिक चुनाव में जनता वोट देती है और उसकी इच्छा ही यह तय करती है कि कौन चुनाव जीतेगा। लेकिन लोगों के द्वारा अपनी रुचि को व्यक्त करने के अनेक तरीके हो सकते हैं और उनकी पसंद की गणना करने की भी बहुत सारी विधियाँ हो सकती हैं। खेल के इन अलग-अलग नियमों से इस बात का फ़ैसला बदल सकता है कि जीत किसकी होगी। कुछ नियम ऐसे हैं जिनमें बड़े दलों

© NCERT not to be republished

खुद करें—खुद सीखें

अपनी कक्षा में चुनाव सम्पन्न कर चार कक्षा-प्रतिनिधियों को चुनें। चुनाव निम्न तीन अलग-अलग तरीकों से करें :

- प्रत्येक छात्र एक वोट दे सकता है। जिन चार छात्रों को सबसे अधिक वोट मिले उन्हें चुना जाय।
- प्रत्येक छात्र के पास चार वोट हैं, जिसे वे चाहें तो एक ही प्रत्याशी को दे दें या उसे अन्य प्रत्याशियों में बाँट दें। जिन चार छात्रों को सबसे अधिक वोट मिले उन्हें चुना जाय।
- प्रत्येक छात्र विभिन्न प्रत्याशियों को वरीयता क्रम में वोट दे और गणना की विधि वह हो जो राज्यसभा सदस्यों के निर्वाचन में प्रयोग की जाती है (इस विधि का आगे वर्णन किया गया है)।

क्या इन सभी तरीकों से चुनाव कराने पर वही चार लोग चुनाव जीते ? यदि नहीं, तो क्या फर्क पड़ा ? और क्यों?

को लाभ पहुँचता है; कुछ नियमों से छोटे खिलाड़ियों (दलों) को मदद मिलती है। कुछ नियम बहुसंख्यक समुदाय के हित में जाते हैं, तो अन्य अल्पसंख्यकों को संरक्षण देते हैं। आइये हम एक नाटकीय उदाहरण से समझें कि ऐसा कैसे होता है।

'जो सबसे आगे वही जीते'

इस अखबार की कतरन को देखिये।

यह भारतीय लोकतंत्र के एक ऐतिहासिक क्षण के बारे में है। 1984 के लोक

सारे भारत में सबसे अधिक प्रसारित हिन्दी दैनिक

नवभारत टाइम्स

रविवारीय संस्करण

वर्ष ३८ संख्या ३६३ नगर नई दिल्ली रविवार ३० दिसम्बर १९८४ पौष ९ शक सं. १९०६ ६५ पैसे

पहली बार कांग्रेस को तीन-चौथाई बहुमत

हेगड़े सरकार का इस्तीफा

© NCERT not to be republished

50 प्रतिशत से भी कम वोट और 80 प्रतिशत से अधिक सीटें ! क्या यह ठीक है? हमारे संविधान निर्माताओं ने ऐसी गड़बड़ व्यवस्था को कैसे स्वीकार किया?

सभा चुनाव में काँग्रेस पार्टी ने 543 में से 415 सीटें जीतीं–जो कुल सीटों के 80 प्रतिशत से भी अधिक है। लोक सभा चुनावों में किसी दल को ऐसी सफलता कभी नहीं मिली। इस चुनाव से क्या पता चलता है?

काँग्रेस पार्टी को तीन-चौथाई सीटें मिलीं। क्या इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक पाँच भारतीय नागरिकों में से चार ने काँग्रेस को वोट दिया ? वास्तव में नहीं। नीचे दी गयी तालिका को देखें। काँग्रेस पार्टी को 48 प्रतिशत वोट मिले। इसका अर्थ यह हुआ कि कुल मिलाकर जितने लोगों ने मतदान किया उसमें केवल 48 प्रतिशत लोगों ने काँग्रेस को वोट दिया, लेकिन पार्टी को 80 प्रतिशत से भी अधिक सीटें मिलीं। अन्य दलों के प्रदर्शन को देखें। भाजपा को 7.4 प्रतिशत वोट मिले लेकिन एक प्रतिशत से कम सीटें मिली। ऐसा कैसे हुआ ?

1984 के लोकसभा चुनाव में प्रमुख दलों द्वारा प्राप्त वोट और सीटें

पार्टी	वोट (%)	सीट
काँग्रेस	48.0	415
भाजपा	7.4	2
जनता पार्टी	6.7	10
लोकदल	5.7	3
माकपा	5.7	22
तेलगु देशम	4.1	30
द्रमुक	2.3	2
अन्नाद्रमुक	1.6	12
अकाली दल	1.0	7
असम गण परिषद्	1.0	7

ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हम अपने देश में चुनाव की एक विशेष विधि का पालन करते हैं। इस व्यवस्था में –

- पूरे देश को 543 निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया गया है;
- प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है; और
- उस निर्वाचन क्षेत्र में जिस प्रत्याशी को सबसे अधिक वोट मिलते हैं उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है।

© NCERT not to be republished

यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि इस व्यवस्था में जिस प्रत्याशी को अन्य सभी प्रत्याशियों से अधिक वोट मिल जाते हैं उसे ही निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। विजयी प्रत्याशी के लिए यह ज़रूरी नहीं कि उसे कुल मतों का बहुमत मिले। इस विधि को 'जो सबसे आगे वही जीते' प्रणाली (फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट सिस्टम) कहते हैं। चुनावी दौड़ में जो प्रत्याशी अन्य प्रत्याशियों के मुकाबले सबसे आगे निकल जाता है वही विजयी होता है। इसे बहुलवादी व्यवस्था भी कहते हैं। संविधान इसी विधि को स्वीकार करता है।

आइये अपने उदाहरण की ओर लौटें। काँग्रेस पार्टी को प्राप्त मतों के अनुपात से ज़्यादा सीटें इसलिए मिलीं क्योंकि अनेक निर्वाचन क्षेत्रों में जहाँ उसके प्रत्याशी जीते उन्हें 50 प्रतिशत से कम वोट मिले। यदि चुनाव मैदान में कई प्रत्याशी हों तो जीतने वाले प्रत्याशी को प्रायः 50 प्रतिशत से कम वोट मिलते हैं। सभी हारने वाले प्रत्याशियों के वोट बेकार चले जाते हैं क्योंकि इन वोटों के आधार पर उन प्रत्याशियों या दलों को कोई सीट नहीं मिलती। मान लीजिये कि किसी पार्टी को प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में 25 प्रतिशत वोट मिलते हैं लेकिन अन्य प्रत्याशियों को उससे भी कम वोट मिलते हैं। उस स्थिति में केवल 25 प्रतिशत या उससे भी कम वोट पा कर कोई दल सभी सीटें जीत सकता है।

समानुपातिक प्रतिनिधित्व

आइये इसकी तुलना इज़राइल में होने वाले चुनावों से करें जहाँ एक बिलकुल भिन्न चुनाव व्यवस्था का पालन किया जाता है। इज़राइल में मतगणना के बाद, प्रत्येक पार्टी को संसद में उसी अनुपात में सीटें दे दी जाती हैं जिस अनुपात में उन्हें वोटों में हिस्सा मिलता है (आगे बॉक्स देखें)। प्रत्येक पार्टी चुनावों से पहले अपने प्रत्याशियों की एक प्राथमिकता सूची जारी कर देती है और अपने उतने ही प्रत्याशियों को उस प्राथमिकता सूची से चुन लेती है जितनी सीटों का कोटा उसे दिया जाता है। चुनावों की इस व्यवस्था को 'समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली' कहते हैं। इस प्रणाली में किसी पार्टी को उतनी ही प्रतिशत सीटें मिलती हैं जितने प्रतिशत उसे वोट मिलते हैं।

समानुपातिक प्रतिनिधित्व के दो प्रकार होते हैं। कुछ देशों जैसे इज़राइल या नीदरलैंड में पूरे देश को एक निर्वाचन क्षेत्र माना जाता है और प्रत्येक पार्टी को राष्ट्रीय चुनावों में प्राप्त वोटों के अनुपात में सीटें दे दी जाती हैं। दूसरा तरीका अर्जेंटीना व पुर्तगाल में देखने को मिलता है जहाँ पूरे देश को

यह तो बड़ा भ्रम पैदा करने वाला है। इस व्यवस्था में हमें कैसे पता चलेगा कि हमारा सांसद या विधायक कौन है? यदि मुझे कोई काम कराना है, तो मैं किसके पास जाऊँगा?

© NCERT not to be republished

बहु-सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक पार्टी प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए अपने प्रत्याशियों की एक सूची जारी करती है जिसमें उतने ही नाम होते हैं जितने प्रत्याशियों को उस निर्वाचन क्षेत्र से चुना जाना होता है। इन दोनों ही रूपों में मतदाता राजनीतिक दलों को वोट देते हैं न कि उनके प्रत्याशियों को। एक पार्टी को किसी निर्वाचन क्षेत्र में जितने मत प्राप्त होते हैं उसी आधार पर उसे उस निर्वाचन क्षेत्र में सीटें दे दी जाती हैं। अत: किसी निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधि वास्तव में राजनीतिक

इज़राइल में समानुपातिक प्रतिनिधित्व

इज़राइल में चुनावों के लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनाई गई है। वहाँ विधायिका (नेसेट) के चुनाव प्रत्येक चार वर्ष पर होते हैं। प्रत्येक पार्टी अपने प्रत्याशियों की एक सूची जारी करती है लेकिन मतदाता प्रत्याशियों को नहीं वरन् पार्टियों को वोट देते हैं। प्रत्येक पार्टी को प्राप्त वोटों के अनुपात में ही विधायिका में सीटें मिलती हैं। इससे सीमित जनाधार वाली छोटी पार्टियों को भी विधायिका में कुछ प्रतिनिधित्व मिल जाता है (शर्त यह है कि विधायिका में सीट पाने के लिए न्यूनतम 3.25 प्रतिशत वोट मिलने चाहिये)। इससे प्राय: बहुदलीय गठबंधन सरकारें बनती हैं।

निम्नलिखित सारणी में 2015 के नेसेट के चुनाव-परिणाम दिये गये हैं। इसके आधार पर आप यह पता लगा सकते हैं कि विभिन्न पार्टियों को कितने प्रतिशत सीट मिलीं ।

पार्टी का नाम	कुल मतों का प्रतिशत	सीट	कुल सीटों का प्रतिशत
लिकुड	23.40	30	
ज़ियोनिस्ट शिविर	18.67	24	
संयुक्त सूची (हदाश, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक सभा, नवीनीकरण के लिए अरब आंदोलन, संयुक्त अरब सूची)	10.61	13	
येश ऐटिड	8.82	11	
कुलानु	7.49	10	
हबायित हयेहुदी	6.74	8	
शास	5.74	7	
इज़राइल बीइटेनु	5.10	6	
यु टी जे	4.99	6	
इज़राइल का वामपक्ष	3.93	5	
अन्य दल	4.51	0	
कुल सीटें	100	120	

© NCERT not to be republished

दलों के प्रतिनिधि होते हैं। भारत में हमने समानुपातिक प्रतिनिधित्त्व प्रणाली को केवल अप्रत्यक्ष चुनावों के लिए ही सीमित रूप में अपनाया है। हमारा संविधान राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्य सभा और विधान परिषदों के चुनावों के लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का एक तीसरा और जटिल स्वरूप प्रस्तावित करता है।

'सर्वाधिक वोट पाने वाले की जीत' और 'समानुपातिक प्रतिनिधित्व' चुनाव व्यवस्था की तुलना

सर्वाधिक वोट पाने वाले की जीत	**समानुपातिक प्रतिनिधित्व**
पूरे देश को छोटी-छोटी भौगोलिक इकाइयों में बाँट देते हैं जिसे निर्वाचन क्षेत्र या जिला कहते हैं?	किसी बड़े भौगोलिक क्षेत्र को एक निर्वाचन क्षेत्र मान लिया जाता है। पूरा का पूरा देश एक निर्वाचन क्षेत्र गिना जा सकता है।
हर निर्वाचन क्षेत्र से केवल एक प्रतिनिधि चुना जाता है।	एक निर्वाचन क्षेत्र से कई प्रतिनिधि चुने जा सकते हैं।
मतदाता प्रत्याशी को वोट देता है।	मतदाता पार्टी को वोट देता है।
पार्टी को प्राप्त वोटों के अनुपात से अधिक या कम सीटें विधायिका में मिल सकती हैं।	हर पार्टी को प्राप्त मत के अनुपात में विधायिका में सीटें हासिल होती हैं।
विजयी उम्मीदवार को ज़रूरी नहीं कि वोटों का बहुमत (50%+1) मिले	विजयी उम्मीदवार को वोटों का बहुमत हासिल होता है।
उदाहरण – यूनाइटेड किंगडम और भारत	जैसे कि इज़राइल और नीदरलैंड

© NCERT not to be republished

राज्य सभा के चुनावों में समानुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली

समानुपातिक प्रतिनिधित्व का एक तीसरा स्वरूप हमें भारत में राज्य सभा चुनावों में देखने को मिलता है : इसे 'एकल संक्रमणीय मत प्रणाली' कहते हैं। प्रत्येक राज्य को राज्य सभा में सीटों का निश्चित कोटा प्राप्त है। राज्यों की विधान सभा के सदस्यों द्वारा इन सीटों के लिए चुनाव किया जाता है। इसमें राज्य के विधायक ही मतदाता होते हैं। मतदाता चुनाव में खड़े सभी प्रत्याशियों को अपनी पसंद के अनुसार एक वरीयता क्रम में मत देता है। जीतने के लिए किसी प्रत्याशी को मतों का एक कोटा प्राप्त करना पड़ता है। जो निम्नलिखित फार्मूले के आधार पर निकाला जाता है।

$$\left(\frac{\text{कुल मतदान}}{\text{कुल विजयी उम्मीदवार} + 1}\right) + 1$$

उदाहरण के लिए यदि राजस्थान के 200 विधायकों को राज्य सभा के लिए चार सदस्य चुनना है तो विजयी उम्मीदवार को $\left(\frac{200}{4+1}\right)+1 \Rightarrow \frac{200}{5}+1 \Rightarrow 40+1 \Rightarrow 41$ वोटों की ज़रूरत पड़ेगी।

जब मतगणना होती है तब उम्मीदवारों को प्राप्त 'प्रथम वरीयता' वोट गिना जाता है। प्रथम वरीयता वोटों की गणना के बाद, यदि प्रत्याशियों की वांछित संख्या वोटों का कोटा नहीं प्राप्त कर पाती तो पुन: मतगणना की जाती है। ऐसे उस प्रत्याशी को मतगणना से निकाल दिया जाता है जिसे प्रथम वरीयता वाले सबसे कम वोट मिले हों। उसके वोटों को अन्य प्रत्याशियों में बाँट दिया जाता है; ऐसा करने में प्रत्येक मत पत्र पर अंकित द्वितीय वरीयता वाले प्रत्याशी को वह मत हस्तांतरित कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया को तब तक जारी रखा जाता है जब तक वांछित संख्या (4) के बराबर प्रत्याशियों को विजयी घोषित नहीं कर दिया जाता।

भारत में 'सर्वाधिक वोट से जीत की' प्रणाली क्यों स्वीकार की गई?

इस प्रश्न के उत्तर का अनुमान लगाना बहुत कठिन नहीं है। यदि आपने ऊपर बॉक्स में राज्य सभा के चुनाव प्रक्रिया के बारे में पढ़ा होगा, तो आपकी समझ में आ गया होगा कि यह प्रक्रिया काफी जटिल है जो किसी छोटे देश में तो लागू हो सकती है पर उपमहाद्वीप जैसे विशाल देश भारत में नहीं। सर्वाधिक वोट से जीत वाली व्यवस्था की सफलता इसकी लोकप्रियता का कारण है। उन सामान्य मतदाताओं के लिए जिन्हें राजनीति और चुनाव का विशेष ज्ञान नहीं है, इस पूरी चुनाव व्यवस्था को समझना अत्यंत सरल है। इसके अतिरिक्त चुनाव के समय मतदाताओं के पास स्पष्ट विकल्प होते हैं।

© NCERT not to be republished

मतदाताओं को वोट करते समय किसी प्रत्याशी या दल को केवल स्वीकृति प्रदान करना होता है। राजनीति की वास्तविकता को ध्यान में रखकर मतदाता किसी प्रत्याशी को भी वरीयता दे सकता है और किसी दल को भी। वह चाहे तो इन दोनों में, मतदान के समय, संतुलन बनाने की कोशिश भी कर सकता है। यह प्रणाली मतदाताओं को केवल दलों में ही नहीं वरन् उम्मीदवारों में भी चयन का स्पष्ट विकल्प देती है। अन्य चुनावी व्यवस्थाओं में खासतौर से समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में, मतदाताओं को किसी एक दल को चुनने का विकल्प दिया जाता है लेकिन प्रत्याशियों का चयन पार्टी द्वारा जारी की गयी सूची के अनुसार होता है। इस प्रकार, किसी क्षेत्र विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाला और उसके प्रति उत्तरदायी, कोई एक प्रतिनिधि नहीं होता। लेकिन सर्वाधिक वोट से जीत वाली व्यवस्था पर आधारित निर्वाचन क्षेत्रों में मतदाता जानते हैं कि उनका प्रतिनिधि कौन है और उसे उत्तरदायी ठहरा सकते हैं।

कार्टून बूझें

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

29 मई 1949

इस कार्टून में भीमकाय काँग्रेस के आगे विपक्ष एक बौने के रूप में दिखाया गया है। क्या यह हमारे निर्वाचन प्रणाली का परिणाम था?

लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संविधान निर्माता समझते थे कि समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली पर आधारित चुनाव संसदीय प्रणाली में सरकार के स्थायित्व के लिए उपयुक्त नहीं होंगे। अगले अध्याय में हम संसदीय प्रणाली की प्रकृति के बारे में पढ़ेंगे। इस व्यवस्था की माँग है कि कार्यपालिका को विधायिका में बहुमत प्राप्त हो। आप देखेंगे कि समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से स्पष्ट बहुमत मिलने में कठिनाई होगी क्योंकि मतों के प्रतिशत के अनुपात में विधायिका में सीटें बँट जायेंगी। सर्वाधिक

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

नीचे 2016 में तमिलनाडु विधान सभा चुनाव के परिणाम दिये गये हैं।

- विधान सभा की संरचना कैसी होती यदि वहाँ इज़राइल की तरह समानुपातिक प्रतिनधित्व प्रणाली होती?
- किस पार्टी का बहुमत होगा?
- कौन सरकार बनायेगा?
- इस व्यवस्था का राजनीतिक दलों के संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

कुल सीटें 234 (232 पर चुनाव हुए)			
पार्टी	वोट	सीट	समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में सीट
ए आई ए डी एम के	40.77	135	
डी एम के	31.64	88	
आई एन सी	6.42	8	
पी एम के	5.32	0	
बी जे पी	2.84	0	
डी एम डी के	2.39	0	
सी पी आई	0.79	0	
आई यू एम एल	0.73	1	
अन्य दल	6.37	0	
निर्दलीय	1.43	0	
नोटा	1.30	–	

मत से जीत वाली प्रणाली में अमूमन बड़े दलों या गठबंधनों को बोनस के रूप में कुछ अतिरिक्त सीटें मिल जाती हैं। ये सीटें उन्हें प्राप्त मतों के अनुपात से अधिक होती हैं। अत: यह प्रणाली एक स्थायी सरकार बनाने का मार्ग प्रशस्त कर संसदीय सरकार को सुचारू और प्रभावी ढंग से काम करने का अवसर देती है। अंत में, सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली एक निर्वाचन क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक वर्गों को एकजुट होकर चुनाव जीतने में मदद करती है। भारत जैसे विविधताओं वाले देश में, समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली प्रत्येक समुदाय को अपनी एक राष्ट्रव्यापी पार्टी बनाने को प्रेरित करेगी। संभवत: यह बात भी हमारे संविधान बनाने वालों के दिमाग में रही होगी।

संविधान का अब तक का कामकाज संविधान-निर्माताओं की अपेक्षाओं को प्रमाणित करता है। संविधान निर्माताओं की उम्मीदों को संविधान की कार्यप्रणाली से प्राप्त अनुभव प्रमाणित करता है। सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली आम मतदाता के लिए

© NCERT not to be republished

सरल और सुपरिचित सिद्ध हुई है। इसने केंद्र और राज्यों में बड़े दलों को स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने में मदद की है। इस प्रणाली ने उन दलों को भी हतोत्साहित किया है जो किसी एक जाति या समुदाय से ही अपने सभी वोट प्राप्त करते हैं। समान्यतः सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली से द्विदलीय व्यवस्था उभरती है। इसका मतलब है कि सत्ता के लिए दो प्रमुख प्रतियोगी हैं और यही दोनों बारी-बारी से सत्ता प्राप्त करते हैं। नये दलों या किसी तीसरी पार्टी को इस प्रतियोगिता में सम्मिलित होने और सत्ता प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इस संदर्भ में भारत में इस प्रणाली का अनुभव कुछ अलग है। स्वतंत्रता के बाद, यद्यपि हमने सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली अपनायी, फिर भी एक दल का वर्चस्व उभर कर सामने आया इसके साथ-साथ अनेक छोटे दल भी अस्तित्व में रहे। 1989 के बाद, भारत में बहुदलीय-गठबंधनों की कार्यप्रणाली को देखा जा सकता है। इसी के साथ, अनेक राज्यों में धीरे-धीरे द्वि-दलीय प्रतियोगिता उभर रही है। लेकिन भारतीय दलीय प्रणाली की प्रमुख विशेषता यह है कि गठबंधन सरकारों के आने से नये और छोटे दलों को सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली के बावजूद चुनावी प्रतियोगिता में प्रवेश करने का मौका मिला है।

निर्वाचन क्षेत्रों का आरक्षण

हमने पहले पढ़ा कि सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली में किसी निर्वाचन क्षेत्र में जिस किसी उम्मीदवार को सबसे अधिक वोट मिल जाता है उसे ही चुना हुआ घोषित कर दिया जाता है। इससे छोटे-छोटे सामाजिक समूहों का अहित हो जाता है। यह भारतीय सामाजिक परिवेश में और अधिक महत्त्वपूर्ण है। हमारे यहाँ जाति आधारित भेदभाव का इतिहास रहा है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में, सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली का परिणाम यह होगा कि दबंग सामाजिक समूह और जातियाँ हर जगह जीत जायेंगी और दलित-उत्पीड़ित सामाजिक समूहों को कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो पायेगा। हमारे संविधान निर्माता इस कठिनाई से वाकिफ़ थे और ऐसे दलित-उत्पीड़ित सामाजिक समूहों के लिए उचित और न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की आवश्यकता समझते थे।

> पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था भारत के लिए अभिशाप रही है, इसने देश की अपूरणीय क्षति की है। ··· पृथक निर्वाचन मंडल ने हमारी प्रगति को रोक दिया है। ··· हम (मुसलमान) राष्ट्र में मिल जाना चाहते हैं ··· खुदा के वास्ते मुस्लिम समुदाय के लिए किसी प्रकार के आरक्षण पर विचार न करें ···
>
> तजम्मुल हुसैन
> संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड VIII, पृष्ठ 333, 26 मई 1949

© NCERT not to be republished

स्वतंत्रता के पूर्व भी इस विषय पर बहस हुई थी और ब्रिटिश सरकार ने 'पृथक-निर्वाचन मंडल' की शुरूआत की थी। इसका अर्थ यह था कि किसी समुदाय के प्रतिनिधि के चुनाव में केवल उसी समुदाय के लोग वोट डाल सकेंगे। संविधान सभा के अनेक सदस्यों को इस पर शंका थी। उनका विचार था कि यह व्यवस्था हमारे उद्देश्यों को पूरा नहीं करेगी। इसलिए, आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था को अपनाया गया। इस व्यवस्था के अंतर्गत, किसी निर्वाचन क्षेत्र में सभी मतदाता वोट तो डालेंगे लेकिन प्रत्याशी केवल उसी समुदाय या सामाजिक वर्ग का होगा जिसके लिए वह सीट आरक्षित है।

अनेक ऐसे सामाजिक समूह हैं जो पूरे देश में फैले हुए हैं। किसी एक निर्वाचन क्षेत्र में उनकी इतनी संख्या नहीं होती कि वे किसी प्रत्याशी की जीत को प्रभावित कर सकें। लेकिन पूरे देश पर नज़र डालने पर वे अच्छे खासे बड़े समूह के रूप में दिखाई देते हैं। उन्हें समुचित प्रतिनिधित्व देने के लिए आरक्षण की व्यवस्था ज़रूरी हो जाती है। संविधान अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए लोक सभा और राज्य की विधान सभाओं में आरक्षण की व्यवस्था करता है। प्रारंभ में यह व्यवस्था 10 वर्ष के लिए की गई थी पर अनेक संवैधानिक संशोधनों द्वारा इसे बढ़ा कर 2020 तक कर दिया गया है। आरक्षण की अवधि खत्म होने पर संसद इसे और आगे बढ़ाने का निर्णय ले सकती है। इन दोनों समूहों की आरक्षित सीटों का वही अनुपात है जो भारत की जनसंख्या में इनका अनुपात है। लोकसभा की 543 निर्वाचित सीटों में 84 अनुसूचित जाति और 47 अनुसूचित जनजाति (26 जनवरी 2019 की स्थिति) के लिए आरक्षित हैं।

··· लेकिन मैं भारत के आदिवासियों की ओर से कुछ कहना चाहता हूँ। ··· ब्रिटिश सरकार, प्रमुख राजनैतिक दलों और हर प्रबुद्ध भारतीय नागरिक को धन्यवाद कि उनके ही कारण हमें अब तक ऐसे अलग-थलग करके रखा गया था। जैसे किसी को चिड़ियाघर में रखा जाता है। ··· हम आपके साथ घुलने-मिलने को तैयार हैं और इसी कारण ··· हमने व्यवस्थापिकाओं में सीटों के आरक्षण की माँग पर ज़ोर दिया है। ··· हमने पृथक प्रतिनिधित्व की माँग नहीं की है। ··· 1935 के अधिनियम के अंतर्गत, पूरे भारत की सभी विधान सभाओं में 1585 में कुल 24 विधायक आदिवासी थे, ··· और केंद्र में तो एक भी नहीं था।

जयपाल सिंह
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड V, पृष्ठ 226, 27 अगस्त 1947

© NCERT not to be republished

कौन से निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित होंगे, यह कौन तय करता है? किस आधार पर यह निर्णय लिया जाता है? यह निर्णय एक स्वतंत्र संस्था द्वारा लिया जाता है जिसे परिसीमन आयोग कहते हैं। राष्ट्रपति परिसीमन आयोग का गठन करते हैं। यह चुनाव आयोग के साथ मिल कर काम करता है। इसका गठन पूरे देश में निर्वाचन क्षेत्रों की सीमा खींचने के उद्देश्य से किया जाता है। प्रत्येक राज्य में आरक्षण के लिए निर्वाचन क्षेत्रों का एक कोटा होता है जो उस राज्य में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की संख्या के अनुपात में होता है। परिसीमन के बाद, परिसीमन आयोग प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में जनसंख्या की संरचना देखता है। जिन निर्वाचन क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या सबसे ज़्यादा होती है उसे उनके लिए आरक्षित कर दिया जाता है। अनुसूचित जातियों के मामले में, परिसीमन आयोग दो बातों पर ध्यान देता है। आयोग उन निर्वाचन क्षेत्रों को चुनता है जिसमें अनुसूचित जातियों का अनुपात ज़्यादा होता है। लेकिन वह इन निर्वाचन क्षेत्रों को राज्य के विभिन्न भागों में फैला भी देता है। ऐसा इसलिए कि अनुसूचित जातियों का पूरे देश में विखराव समरूप है। जब कभी भी परिसीमन का काम होता है, इन आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में कुछ परिवर्तन कर दिया जाता है। संविधान अन्य उपेक्षित या कमज़ोर वर्गों के लिए इस प्रकार के आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं करता। इधर, लोकसभा और राज्यों की विधान सभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की ज़ोरदार माँग उठी है। यह देखते हुए कि प्रतिनिधि संस्थाओं में बहुत कम महिलाएँ चुनी जाती हैं, उनके लिए एक-तिहाई सीटें आरक्षित करने की बात हो रही है। शहरी और ग्रामीण स्थानीय सरकारों में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित कर दी गई हैं। इसे हम स्थानीय सरकार वाले अध्याय में पढ़ेंगे। लोकसभा और विधान सभा में ऐसी ही व्यवस्था करने के लिए संविधान का संशोधन करना पड़ेगा। इसके लिए लोकसभा में कई बार संशोधन प्रस्ताव लाया गया, पर उसे पारित नहीं किया जा सका।

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव

किसी भी चुनाव प्रणाली की कसौटी यह है कि वह एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव प्रक्रिया सुनिश्चित कर सके। यदि हम लोकतंत्र को एक जमीनी हकीकत बनाना चाहते हैं, तो यह ज़रूरी है कि चुनाव प्रणाली निष्पक्ष और पारदर्शी हो। चुनाव प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे मतदाताओं की आकांक्षाएँ चुनाव परिणामों में न्यायपूर्ण ढंग से व्यक्त हो सकें।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

भारत की आबादी में मुसलमान 14.2 प्रतिशत हैं। लेकिन लोक सभा में मुसलमान सांसदों की संख्या सामान्यतः 6 प्रतिशत से थोड़ा कम रही है जो जनसंख्या में उनके अनुपात के आधे से भी कम है। यही स्थिति अधिकतर राज्य विधान सभाओं में भी है।

तीन छात्रों ने इन तथ्यों से तीन अलग-अलग निष्कर्ष निकाले। आप बतायें कि आप उनसे सहमत हैं या असहमत और क्यों?

हिलाल – यह सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली के अन्याय होने को दिखाता है। हमें समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनानी चाहिये थी।

आरिफ – यह अनुसूचित जातियों और जनजातियों को आरक्षण देने के औचित्य को बताता है। आवश्यकता इस बात की है कि मुसलमानों को भी उसी तरह का आरक्षण दिया जाय, जैसा अनुसूचित जातियों और जनजातियों को दिया गया।

सबा – सभी मुसलमानों को एक जैसा मानकर बात करने का कोई मतलब नहीं है। मुसलमान महिलाओं को इसमें कुछ भी नहीं मिलेगा। हमें मुसलमान महिलाओं के लिए अलग आरक्षण चाहिये।

मैं इतनी समझ रखती हूँ कि भविष्य में अपने करियर को चुन सकूँ और इतनी उम्रदराज़ हूँ कि ड्राइविंग लाइसेंस बना सकूँ, तो क्या मैं इतनी बड़ी नहीं कि वोट डाल सकूँ? यदि ये कानून मुझपर लागू होते हैं, तो मैं इन कानूनों को बनाने वाले के बारे में फ़ैसला क्यों नहीं ले सकती?

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और चुनाव लड़ने का अधिकार

चुनाव का तरीका निर्धारित करने के अतिरिक्त संविधान चुनावों के बारे में दो अन्य मूल प्रश्नों के उत्तर देता है – मतदाता कौन है और कौन चुनाव लड़ सकता है? इन दोनों बिंदुओं पर हमारा संविधान पूर्ण रूप से स्थापित लोकतांत्रिक परंपराओं का पालन करता है।

आप जानते हैं कि लोकतांत्रिक चुनावों में देश के सभी वयस्क नागरिकों को चुनाव में वोट देने का अधिकार होना ज़रूरी है। इसी को सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के नाम से जानते हैं। अनेक देशों में नागरिकों को इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए अपने शासकों से बहुत लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी। बहुत से देशों में तो महिलाओं को यह अधिकार काफी देर से और बड़े संघर्ष के बाद मिला। भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक महत्वपूर्ण निर्णय के द्वारा प्रत्येक वयस्क भारतीय नागरिक को वोट देने का अधिकार प्रदान किया।

© NCERT not to be republished

1989 तक, 21 वर्ष से ऊपर के भारतीय नागरिकों को वयस्क भारतीय माना जाता था। 1989 में संविधान के एक संशोधन के द्वारा इसे घटा कर 18 वर्ष कर दिया गया। वयस्क मताधिकार सभी नागरिकों को अपने प्रतिनिधियों की चयन प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्रदान करता है। यह समानता और गैर-भेदभाव के सिद्धांत के अनुरूप है, जिसका अध्ययन हमने अधिकारों वाले अध्याय में किया है। अनेक लोग पहले और आज भी ऐसा मानते हैं कि बिना शैक्षणिक योग्यता के सभी को वोट देने का अधिकार देना सही निर्णय नहीं था। लेकिन हमारे संविधान निर्माताओं को सभी नागरिकों की योग्यता और महत्त्व में समान रूप से विश्वास था कि वे समाज, देश और अपने निर्वाचन क्षेत्र के हित में निर्णय ले सकते हैं।

जो वोट देने के अधिकार के बारे में सच है, वही चुनाव लड़ने के अधिकार के बारे में भी सच है। सभी नागरिकों को चुनाव में खड़े होने और जनता का प्रतिनिधि होने का अधिकार है। लेकिन विभिन्न पदों पर चुनाव लड़ने की न्यूनतम आयु अर्हता भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के लिए लोक सभा या विधान सभा चुनाव में खड़े होने के लिए उम्मीदवार को कम से कम 25 वर्ष का होना चाहिए। कुछ और भी प्रतिबंध हैं। जैसे एक कानूनी प्रतिबंध यह है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए दो या दो से अधिक वर्षों के लिए जेल हुई हो, तो वह चुनाव लड़ने के योग्य नहीं है। लेकिन चुनाव लड़ने के लिए आय, शिक्षा, वर्ग या लिंग के आधार पर कोई प्रतिबंध नहीं है। इस रूप में, हमारी चुनाव व्यवस्था सभी नागरिकों के लिए खुली हुई है।

कार्टून बूझें

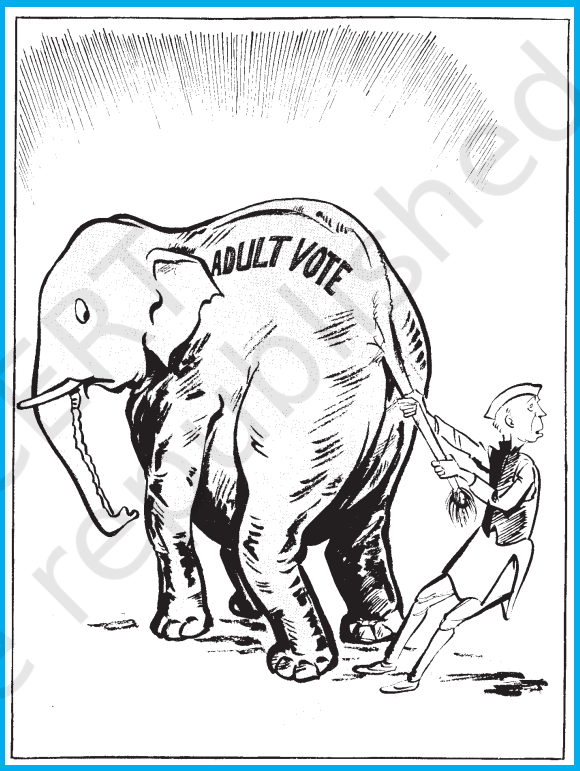

शंकर, ©, चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

21 अक्तूबर 1951

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को हाथी के रूप में क्यों दिखाया गया है। क्या यह संभालने योग्य नहीं है? या यह उस कहानी की तरह है जिसमें कई अंधे हाथी के अलग-अलग अंगों के आधार पर उसे बताने की कोशिश करते हैं?

© NCERT not to be republished

स्वतंत्र निर्वाचन आयोग

भारत में चुनाव प्रक्रिया को स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने के लिए कई प्रयास किए गए हैं। एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कदम है, जो चुनावों के संचालन और देख-रेख के लिए बनाया गया है। क्या आप जानते हैं कि अनेक देशों में चुनाव कराने के लिए किसी स्वतंत्र मशीनरी का अभाव है।

> ***अनुच्छेद 324(1) – ''इस संविधान के अधीन संसद और प्रत्येक राज्य के विधान मंडल के लिए कराये जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण एक आयोग में निहित होगा (जिसे इस संविधान में निर्वाचन आयोग कहा गया है)।''***

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 324 'निर्वाचनों के लिए मतदाता सूची तैयार कराने और चुनाव के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण' का अधिकार एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग को देता है। संविधान के ये शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि ये निर्वाचन आयोग को चुनावों से संबंधित हर बात पर अंतिम निर्णय करने की भूमिका सौंपते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने भी संविधान की इस व्याख्या से सहमति व्यक्त की है।

भारत के निर्वाचन आयोग की सहायता करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक मुख्य निर्वाचन अधिकारी होता है। निर्वाचन आयोग स्थानीय निकायों के चुनाव के लिए ज़िम्मेदार नहीं होता। जैसा कि हम स्थानीय सरकारों वाले अध्याय में पढ़ेंगे, इसके लिए राज्यों में राज्य निर्वाचन आयुक्त होते हैं, जो निर्वाचन आयोग से अलग कार्य करते हैं और इनमें से प्रत्येक का काम करने का अपना अलग दायरा है।

भारत का निर्वाचन आयोग एक सदस्यीय या बहु-सदस्यीय भी हो सकता है। 1989 तक, निर्वाचन आयोग एक-सदस्यीय था। 1989 के आम चुनावों के ठीक पहले, दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त कर इसे बहु-सदस्यीय बना दिया गया। चुनावों के बाद उसे फिर एक सदस्यीय बना दिया गया। 1993 में पुनः दो निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति हुई और निर्वाचन आयोग बहु-सदस्यीय हो गया; तब से यह बहु-सदस्यीय बना हुआ है। शुरू में बहु-सदस्यीय निर्वाचन आयोग को लेकर तरह-तरह की शंकाएँ थीं। मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य आयुक्तों के बीच इस बात पर घोर मतभेद था कि किसको कितनी शक्ति प्राप्त है। इसका समाधान सर्वोच्च न्यायालय को करना पड़ा। अब इस बात पर सामान्य सहमति है कि बहु-सदस्यीय

© NCERT not to be republished

निर्वाचन आयोग ज़्यादा उपयुक्त है क्योंकि इससे आयोग की शक्तियों में साझेदारी हो गई है और आयोग पहले से कहीं ज़्यादा जवाबदेह बन गया है।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग की अध्यक्षता करता है, लेकिन अन्य दोनों निर्वाचन आयुक्तों की तुलना में उसे ज़्यादा शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। एक सामूहिक संस्था के रूप में चुनाव संबंधी सभी निर्णय में मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य दोनों निर्वाचन आयुक्तों की शक्तियाँ समान हैं। उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर की जाती है। ऐसे में संभव है कि सरकार के द्वारा किसी ऐसे हितैषी की नियुक्ति निर्वाचन आयोग में कर दी जाए जो चुनावों में सरकार का समर्थन करे। इस शंका के चलते अनेक लोगों ने इस प्रक्रिया को बदलने का सुझाव दिया है। उनका सुझाव है कि इसके लिए एक भिन्न प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिये, जिसमें मुख्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति में विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करना ज़रूरी होना चाहिए।

संविधान मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों के कार्यकाल की सुरक्षा देता है। उन्हें 6 वर्षों के लिए अथवा 65 वर्ष की आयु तक (जो पहले खत्म हो) के लिए नियुक्त किया जाता है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को कार्यकाल समाप्त होने के पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है; पर इसके लिए संसद के दोनों सदनों को विशेष बहुमत से

क्या अब यह व्यवस्था स्थायी हो गई है या सरकार एक सदस्यीय निर्वाचन आयोग को दुबारा कायम कर सकती है? क्या संविधान इस खेल की आज्ञा देता है?

विशेष बहुमत

विशेष बहुमत का अर्थ है –

- उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत; और
- सदन की कुल सदस्य संख्या का साधारण बहुमत

मान लीजिए कि आपको अपनी कक्षा में विशेष बहुमत से एक प्रस्ताव पास करना है। कल्पना करें कि आप की कक्षा में 75 विद्यार्थी हैं। लेकिन मतदान के दिन केवल 51 विद्यार्थी उपस्थित हैं और उनमें केवल 50 ने ही मतदान में भाग लिया। इस परिस्थिति में आप कब कह सकेंगे कि प्रस्ताव 'विशेष बहुमत' से पास हो गया है?

इस पुस्तक के कम से कम तीन अध्यायों में आपको 'विशेष बहुमत' का उल्लेख मिलेगा। एक तो कार्यपालिका से संबंधित अगले ही अध्याय में है जहाँ राष्ट्रपति पर महाभियोग का उल्लेख किया गया है। अन्य उन दो स्थानों को ढूँढ़ें जहाँ पर विशेष बहुमत की चर्चा की गई है।

© NCERT not to be republished

पारित कर इस आशय का एक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को भेजना होगा। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि कोई भी सरकार उस मुख्य निर्वाचन आयुक्त को न हटा सके जो चुनावों में उसकी तरफदारी करने से मना करे। निर्वाचन आयुक्तों को भारत का राष्ट्रपति हटा सकता है।

भारत के निर्वाचन आयोग के पास काफी सारे काम हैं।

- वह मतदाता सूचियों को नया करने के काम की देख-रेख करता है। पूरा प्रयास करता है कि मतदाता सूचियों में गलतियाँ न हो अर्थात् पंजीकृत मतदाताओं के नाम न छूट जाएँ और न ही उसमें ऐसे लागों के नाम हों जो मतदान के अयोग्य हों या जीवित ही न हों।
- वह चुनाव का समय और चुनावों का पूरा कार्यक्रम तय करता है। इस कार्यक्रम में निम्न बातों का उल्लेख होता है – चुनाव की अधिघोषणा, नामांकन प्रक्रिया शुरू करने की तिथि, मतदान की तिथि, मतगणना की तिथि और चुनाव परिणामों की घोषणा।
- इस पूरी प्रक्रिया में, निर्वाचन आयोग को स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए निर्णय लेने का अधिकार है। वह पूरे देश, किसी राज्य या किसी निर्वाचन क्षेत्र में चुनावों को इस आधार पर स्थगित या रद्द कर सकता है कि वहाँ माकूल माहौल नहीं है तथा स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना संभव नहीं है। निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों और उनके उम्मीदवारों के लिए एक आदर्श आचार संहिता लागू करता है। वह किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में दोबारा चुनाव कराने की आज्ञा दे सकता है। यदि उसे लगे कि मतगणना प्रक्रिया पूरी तरह से उचित और न्यायपूर्ण नहीं थी तो वह वह दोबारा मतगणना कराने की भी आज्ञा दे सकता है।
- निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों को मान्यता देता है और उन्हें चुनाव चिह्न आबंटित करता है।

निर्वाचन आयोग के पास बहुत ही सीमित कर्मचारी होते हैं। वह प्रशासनिक मशीनरी की मदद से चुनाव कराता है। लेकिन एक बार चुनाव प्रक्रिया शुरू हो जाने पर चुनाव संबंधी कार्यों के संबंध में आयोग का पूरी प्रशासनिक मशीनरी पर नियंत्रण हो जाता है। चुनाव प्रक्रिया के दौरान राज्य और केंद्र सरकार के प्रशासनिक अधिकारियों को चुनाव संबंधी कार्य दिये जाते हैं; और इस संबंध में निर्वाचन आयोग का उन पर पूरा नियंत्रण होता है। निर्वाचन आयोग इन अधिकारियों का तबादला कर सकता है या उनके तबादले को रोक सकता है; अधिकारी निष्पक्ष ढंग से काम करने में विफल रहे तो आयोग उसके विरुद्ध कार्रवाई भी कर सकता है।

विगत वर्षों में, निर्वाचन आयोग एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में उभरा है जिसने चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग किया

© NCERT not to be republished

है। उसने चुनाव प्रक्रिया की गरिमा बनाये रखने के लिए निष्पक्ष और न्यायपूर्ण ढंग से काम किया है।

निर्वाचन आयोग का इतिहास इस बात का गवाह है कि संस्थाओं की कार्यप्रणाली में प्रत्येक सुधार के लिए कानूनी या संवैधानिक परिवर्तन आवश्यक नहीं। यह आम धारणा है कि 25 वर्ष पहले के मुकाबले आज निर्वाचन आयोग ज़्यादा स्वतंत्र और प्रभावी है। ऐसा इसलिए नहीं कि निर्वाचन आयोग की शक्तियाँ या उसकी संवैधानिक सुरक्षा बढ़ा दी गई है। दरअसल निर्वाचन आयोग ने केवल उन शक्तियों का और प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करना शुरू कर दिया है जो उसे संविधान में पहले से ही प्राप्त थीं।

1951–52 से लोकसभा के 16 चुनाव हो चुके हैं। निर्वाचन आयोग के द्वारा विधान सभाओं के अनेक चुनाव और उप-चुनाव कराये गये। निर्वाचन आयोग को असम, पंजाब तथा जम्मू और कश्मीर जैसे हिंसाग्रस्त क्षेत्रों में चुनाव कराने में अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। उसे 1991 में पूरी चुनाव प्रक्रिया को बीच में ही रोकना पड़ा क्योंकि चुनाव प्रचार के दौरान पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या कर दी गई। निर्वाचन आयोग को 2002 में एक अन्य गंभीर समस्या का सामना करना पड़ा जब गुजरात विधान सभा भंग कर दी गई और चुनाव कराना पड़ा। लेकिन निर्वाचन आयोग ने पाया कि राज्य में अप्रत्याशित हिंसा के कारण स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना तुरंत संभव न था। निर्वाचन आयोग ने राज्य में विधान सभा चुनावों को कुछ महीनों के लिए स्थगित करने का निर्णय लिया। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्वाचन आयोग के इस निर्णय को वैध ठहराया।

कार्टून बूझें

आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

सावधान! चुनाव जितना अब मुश्किल काम होने वाला है। अब नई आचार संहिता, सही और स्वच्छ मतदान तथा कड़े अनुशासन जैसी नई मुसीबतों को झेलना पड़ेगा।

नेताजी चुनाव आयोग से डर गये हैं, वे कह रहे हैं कि हमें 'निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव' की चुनौती झेलनी है। नेता चुनाव आयोग से डरते क्यों हैं? क्या यह स्थिति लोकतंत्र के लिए अच्छी है?

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

निर्वाचन आयोग को इन शक्तियों और विशेषाधिकारों को देने के बारे में आप क्या सोचते हैं?

यदि ऐसा नहीं किया जाता तो क्या होता?

- निर्वाचन आयोग चुनाव संबंधी कार्यों में लगाये गये सरकारी कर्मचारियों को आदेश दे सकता है।
- सरकार मुख्य निर्वाचन आयुक्त को नहीं हटा सकती।
- आयोग उस चुनाव को रद्द कर सकता है जो उसे निष्पक्ष न लगे।

क्या कानून में परिवर्तन करके चुनावों में धन और बल के प्रयोग को रोका जा सकता है? क्या केवल कानून बदलने से कोई चीज़ वास्तव में बदलती है?

चुनाव सुधार

चुनाव की कोई प्रणाली कभी आदर्श नहीं हो सकती। उसमें अनेक कमियाँ और सीमाएँ होती हैं। लोकतांत्रिक समाज को अपने चुनावों को और अधिक स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने के तरीकों को बराबर खोजते रहना पड़ता है। वयस्क मताधिकार, चुनाव लड़ने की स्वतंत्रता और एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना को स्वीकार कर भारत में चुनावों को स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाने की कोशिश की गई है। लेकिन पिछले 66 वर्षों के अनुभवों के बाद हमारी चुनाव प्रणाली में सुधार के लिए अनेक सुझाव दिये गये हैं। चुनाव सुधारों के सुझाव निर्वाचन आयोग, विभिन्न राजनीतिक दलों, स्वतंत्र समूहों और अनेक विद्वानों द्वारा दिये गये हैं। इनमें से कुछ सुझाव इस अध्याय में उल्लिखित संवैधानिक प्रावधानों को संशोधित करने के बारे में हैं।

- हमारी चुनाव व्यवस्था को सर्वाधिक मत से जीत वाली प्रणाली के स्थान पर किसी प्रकार की समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू करना चाहिये। इससे राजनीतिक दलों को उसी अनुपात में सीटें मिलेंगी जिस अनुपात में उन्हें वोट मिलेंगे।

© NCERT not to be republished

- संसद और विधान सभाओं में एक तिहाई सीटों पर महिलाओं को चुनने के लिए विशेष प्रावधान बनाये जाएँ।
- चुनावी राजनीति में धन के प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए और अधिक कठोर प्रावधान होने चाहिये। सरकार को एक विशेष निधि से चुनावी खर्चों का भुगतान करना चाहिये।
- जिस उम्मीदवार के विरुद्ध फौज़दारी का मुकदमा हो उसे चुनाव लड़ने से रोक दिया जाना चाहिये, भले ही उसने इसके विरुद्ध न्यायालय में अपील कर रखी हो।
- चुनाव-प्रचार में जाति और धर्म के आधार पर की जाने वाली किसी भी अपील को पूरी तरह से प्रतिबंधित कर देना चाहिये।
- राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली को नियंत्रित करने के लिए तथा उनकी कार्यविधि को और अधिक पारदर्शी तथा लोकतांत्रिक बनाने के लिए एक कानून होना चाहिये।

ये कुछ सीमित सुझाव हैं। इन सुझावों पर कोई आम राय नहीं है। लेकिन यदि उन पर आम राय बन भी जाये तो भी कानून और औपचारिक प्रावधान एक सीमा तक ही कारगर हो सकते हैं। वास्तव में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव तभी हो सकते हैं जब सभी उम्मीदवार, राजनीतिक दल और वे सभी लोग जो चुनाव प्रक्रिया में भाग लेते हैं– लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा की भावना का सम्मान करें।

कार्टून बूझें

पुरानी आदत छोड़ो और कैमरे के सामने आओ। अब तो तुम्हें टिकट मिल गया है और चुनाव लड़ना है।

© आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

क्या गंभीर अपराध में संलिप्त अपराधी के चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध होना चाहिए?

कानूनी सुधारों के अतिरिक्त, दो और तरीके हैं जिनसे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि चुनाव जनता की अपेक्षाओं और लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को व्यक्त करे। पहला तो यह कि जनता को स्वयं ही और अधिक सतर्क रहना चाहिये तथा राजनीतिक कार्यों में और सक्रियता से भाग लेना

© NCERT not to be republished

चाहिये। लेकिन आम आदमी के लिए नियमित रूप से राजनीति में भाग लेने की अपनी सीमाएँ हैं। इसलिए, यह ज़रूरी है कि अनेक राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक संगठनों का विकास किया जाय जो स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित कराने के लिए पहरेदारी करें।

निष्कर्ष

जिन देशों में प्रतिनिधित्व वाला लोकतंत्र है वहाँ चुनाव और चुनाव का प्रतिनिधित्व वाला स्वरूप लोकतंत्र को प्रभावी और विश्वसनीय बनाने में निर्णायक भूमिका निभाता है। भारत में चुनाव व्यवस्था की सफलता अनेक आधारों पर मापी जा सकती है।

- एक, हमारी चुनाव व्यवस्था ने मतदाताओं को न केवल अपने प्रतिनिधियों को चुनने की स्वतंत्रता दी है, बल्कि उन्हें केंद्र और राज्यों में शांतिपूर्ण ढंग से सरकारों को बदलने का अवसर भी दिया है।
- दो, मतदाताओं ने चुनाव प्रक्रिया में लगातार रुचि ली है और उसमें भाग लिया है। चुनावों में भाग लेने वाले उम्मीदवारों और दलों की संख्या लगातार बढ़ रही है।
- तीन, चुनाव व्यवस्था में सभी को स्थान मिला है और यह सभी को साथ लेकर चली है। हमारे प्रतिनिधियों की सामाजिक पृष्ठभूमि भी धीरे-धीरे बदली है। अब हमारे प्रतिनिधि विभिन्न सामाजिक वर्गों से आते हैं, यद्यपि इनमें अभी महिलाओं की संख्या में संतोषजनक वृद्धि नहीं हुई है।
- चार, देश के अधिकतर भागों में चुनाव परिणाम चुनावी अनियमितताओं और धाँधली से प्रभावित नहीं होते यद्यपि चुनाव में धाँधली करने के अनेक प्रयास किये जाते हैं। आपने चुनावों में हिंसा, मतदाता सूचियों से वोटरों के नाम गायब होने की शिकायतें, डराये-धमकाए जाने आदि की शिकायतें अकसर सुनी होंगी। फिर भी, ऐसी घटनाओं से शायद ही कोई चुनाव परिणाम प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता हो।
- अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चुनाव हमारे लोकतांत्रिक जीवन के अभिन्न अंग हो गये हैं। कोई इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता कि कभी कोई सरकार चुनावों में जनादेश का उल्लंघन भी करेगी। इसी तरह, कोई यह भी कल्पना नहीं कर सकता कि बिना चुनावों के कोई सरकार बन सकेगी। वास्तव में, भारत में निश्चित

© NCERT not to be republished

अंतराल पर होने वाले नियमित चुनावों को एक महान लोकतांत्रिक प्रयोग के रूप में ख्याति मिली है।

- इन सभी बातों से हमारी चुनाव व्यवस्था को देश-विदेश में आदर से देखा जाता है। भारत में मतदाता के अंदर आत्मविश्वास बढ़ा है। मतदाताओं की निगाह में निर्वाचन आयोग का कद बढ़ा है। यह हमारे संविधान निर्माताओं के मूल निर्णयों को उचित ठहराता है। यदि चुनाव प्रक्रिया को कुछ और दोषरहित बनाया जा सके तो हम मतदाता और नागरिक के रूप में लोकतंत्र के इस महोत्सव का और अच्छी तरह आनंद उठा सकेंगे तथा इसे और अर्थपूर्ण बना सकेंगे।

प्रश्नावली

1. निम्नलिखित में कौन प्रत्यक्ष लोकतंत्र के सबसे नजदीक बैठता है?
   (क) परिवार की बैठक में होने वाली चर्चा
   (ख) कक्षा-संचालक (क्लास-मॉनीटर) का चुनाव
   (ग) किसी राजनीतिक दल द्वारा अपने उम्मीदवार का चयन
   (घ) मीडिया द्वारा करवाये गये जनमत-संग्रह

2. इनमें कौन-सा कार्य चुनाव आयोग नहीं करता?
   (क) मतदाता-सूची तैयार करना
   (ख) उम्मीदवारों का नामांकन
   (ग) मतदान-केंद्रों की स्थापना
   (घ) आचार-संहिता लागू करना
   (ड) पंचायत के चुनावों का पर्यवेक्षण

3. निम्नलिखित में कौन-सी राज्य सभा और लोक सभा के सदस्यों के चुनाव की प्रणाली में समान है?
   (क) 18 वर्ष से ज़्यादा की उम्र का हर नागरिक मतदान करने के योग्य है।
   (ख) विभिन्न प्रत्याशियों के बारे में मतदाता अपनी पसंद को वरीयता क्रम में रख सकता है।
   (ग) प्रत्येक मत का समान मूल्य होता है
   (घ) विजयी उम्मीदवार को आधे से अधिक मत प्राप्त होने चाहिए।

© NCERT not to be republished

4. फर्स्ट पास्ट द पोस्ट प्रणाली में वही प्रत्याशी विजेता घोषित किया जाता है जो –
   (क) सर्वाधिक संख्या में मत अर्जित करता है।
   (ख) देश में सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले दल का सदस्य हो।
   (ग) चुनाव-क्षेत्र के अन्य उम्मीदवारों से ज़्यादा मत हासिल करता है।
   (घ) 50 प्रतिशत से अधिक मत हासिल करके प्रथम स्थान पर आता है।

5. पृथक निर्वाचन-मंडल और आरक्षित चुनाव-क्षेत्र के बीच क्या अंतर है? संविधान निर्माताओं ने पृथक निर्वाचन-मंडल को क्यों स्वीकार नहीं किया?

6. निम्नलिखित में कौन-सा कथन गलत है? इसकी पहचान करें और किसी एक शब्द अथवा पद को बदलकर, जोड़कर अथवा नये क्रम में सजाकर इसे सही करें।
   (क) एक फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट (सर्वाधिक मत से जीत वाली) प्रणाली का पालन भारत के हर चुनाव में होता है।
   (ख) चुनाव आयोग पंचायत और नगरपालिका के चुनावों का पर्यवेक्षण नहीं करता।
   (ग) भारत का राष्ट्रपति किसी चुनाव आयुक्त को नहीं हटा सकता।
   (घ) चुनाव आयोग में एक से ज़्यादा चुनाव आयुक्त की नियुक्ति अनिवार्य है।

7. भारत की चुनाव-प्रणाली का लक्ष्य समाज के कमज़ोर तबके की नुमाइंदगी को सुनिश्चित करना है। लेकिन हमारी विधायिका में महिला सदस्यों की संख्या केवल 12 प्रतिशत तक पहुँची है। इस स्थिति में सुधार के लिए आप क्या उपाय सुझायेंगे?

8. एक नये देश के संविधान के बारे में आयोजित किसी संगोष्ठी में वक्ताओं ने निम्नलिखित आशाएँ जतायीं। प्रत्येक कथन के बारे में बतायें कि उनके लिए फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट (सर्वाधिक मत से जीत वाली) प्रणाली उचित होगी या समानुपातिक प्रतिनिधित्व वाली प्रणाली?
   (क) लोगों को इस बात की साफ-साफ जानकारी होनी चाहिए कि उनका प्रतिनिधि कौन है ताकि वे उसे निजी तौर पर जिम्मेदार ठहरा सकें।
   (ख) हमारे देश में भाषाई रूप से अल्पसंख्यक छोटे-छोटे समुदाय हैं और देश भर में फैले हैं, हमें इनकी ठीक-ठीक नुमाइंदगी को सुनिश्चित करना चाहिए।
   (ग) विभिन्न दलों के बीच सीट और वोट को लेकर कोई विसंगति नहीं रखनी चाहिए।
   (घ) लोग किसी अच्छे प्रत्याशी को चुनने में समर्थ होने चाहिए भले ही वे उसके राजनीतिक दल को पसंद न करते हों।

© NCERT not to be republished

9. एक भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त ने एक राजनीतिक दल का सदस्य बनकर चुनाव लड़ा। इस मसले पर कई विचार सामने आये। एक विचार यह था कि भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एक स्वतंत्र नागरिक है। उसे किसी राजनीतिक दल में होने और चुनाव लड़ने का अधिकार है। दूसरे विचार के अनुसार, ऐसे विकल्प की संभावना कायम रखने से चुनाव आयोग की निष्पक्षता प्रभावित होगी। इस कारण, भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त को चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। आप इसमें किस पक्ष से सहमत हैं और क्यों?

10. भारत का लोकतंत्र अब अनगढ़ 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' प्रणाली को छोड़कर समानुपातिक प्रतिनिध्यात्मक प्रणाली को अपनाने के लिए तैयार हो चुका है' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? इस कथन के पक्ष अथवा विपक्ष में तर्क दें।

राष्ट्रीय मतदाता दिवस (National Voters' Day – NVD) प्रतिज्ञा

हम, भारत के नागरिक, लोकतंत्र में अपनी पूर्ण आस्था रखते हुए यह शपथ लेते हैं कि हम अपने देश की लोकतांत्रिक परम्पराओं की मर्यादा को बनाए रखेंगे तथा स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं शांतिपूर्ण निर्वाचन की गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए, निर्भीक होकर, धर्म, वर्ग, जाति, समुदाय, भाषा अथवा अन्य किसी भी प्रलोभन से प्रभावित हुए बिना सभी निर्वाचनों में अपने मताधिकार का प्रयोग करेंगे।

भारत निर्वाचन आयोग के सुव्यवस्थित मतदाता शिक्षा एवं निर्वाचक सहभागिता (Systematic Voters' Education and Electoral Participation — SVEEP) कार्यक्रम और निर्वाचन साक्षरता क्लब (Electoral Literacy Club — ELC) के बारे में जानकारी के लिए देखें http://ecisveep.nic.in

© NCERT not to be republished

अध्याय चार

कार्यपालिका

11103CH04

परिचय

विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सरकार के तीन अंग हैं। ये तीनों मिलकर शासन का कार्य करते हैं तथा कानून-व्यवस्था बनाए रखने और जनता का कल्याण करने में योगदान देते हैं। संविधान यह सुनिश्चित करता है कि ये सभी एक-दूसरे से तालमेल बना कर काम करें और आपस में संतुलन बनाए रखें। संसदीय व्यवस्था में कार्यपालिका और विधायिका एक-दूसरे पर आश्रित है; विधायिका कार्यपालिका को न केवल नियंत्रित करती है बल्कि उससे नियंत्रित भी होती है। इस अध्याय में हम सरकार की कार्यपालिका के संगठन, संरचना और कार्यों का अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में हमें यह भी पता चलेगा कि पिछले कुछ समय के राजनीतिक व्यवहार के कारण इसमें क्या परिवर्तन हुए हैं। इस अध्याय को पढ़ने से आप –

- *संसदीय और राष्ट्रपति प्रणाली की कार्यपालिका में अंतर कर सकेंगे;*
- *भारत के राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति को समझेंगे;*
- *मंत्रिपरिषद् की संरचना और कार्यों के बारे में जान सकेंगे; और*
- *प्रशासनिक मशीनरी के महत्त्व और कार्यों के बारे में जानेंगे।*

© NCERT not to be republished

कार्यपालिका क्या है?

आपके स्कूल के प्रशासन का प्रमुख कौन है? किसी स्कूल या विश्वविद्यालय में महत्त्वपूर्ण निर्णय कौन लेता है? किसी भी संगठन में किसी पदाधिकारी को निर्णय लेना पड़ता है और उसे लागू करना पड़ता है। हम इस क्रिया को प्रशासन या प्रबंधन कहते हैं। लेकिन प्रशासन के लिए संगठन के शीर्ष पर एक ऐसा समूह होना चाहिए जो बड़े या नीतिगत निर्णय ले सके और दैनिक प्रशासनिक कार्यों की देख-रेख तथा उनमें तालमेल कर सके। ऐसे हर संगठन में कुछ लोगों का एक समूह होता है। ये लोग उस संगठन के मुख्य प्रशासनिक या कार्यपालिका अधिकारी के रूप में काम करते हैं। आपने शायद बड़ी कंपनियों, बैंकों और औद्योगिक इकाईयों के प्रशासनिक अधिकारियों के बारे में सुना होगा। उनमें से कुछ पदाधिकारी नीतियों, नियमों और कायदों के बारे में निर्णय लेते हैं, तो कुछ उसे संगठन में लागू करते हैं। कार्यपालिका का अर्थ व्यक्तियों के उस समूह से है जो कायदे-कानूनों को संगठन में रोज़ाना लागू करते हैं।

सरकार के मामले में भी, एक संस्था नीतिगत निर्णय लेती है और नियमों और कायदों के बारे में तय करती है; दूसरी उसे लागू करने की जिम्मेदारी निभाती है। सरकार का वह अंग जो इन नियमों-कायदों को लागू करता है और प्रशासन का काम करता है, कार्यपालिका कहलाता है।

कार्यपालिका के प्रमुख कार्य क्या हैं? कार्यपालिका सरकार का वह अंग है जो विधायिका द्वारा स्वीकृत नीतियों और कानूनों को लागू करने के लिए ज़िम्मेदार है। कार्यपालिका प्रायः नीति-निर्माण में भी भाग लेती है। कार्यपालिका का औपचारिक नाम अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न होता है। कुछ देशों में राष्ट्रपति होता है, तो कहीं चांसलर। कार्यपालिका में केवल राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री या मंत्री ही नहीं होते बल्कि इसके अंदर पूरा प्रशासनिक ढाँचा (सिविल सेवा के सदस्य) भी आते हैं। सरकार के प्रधान और उनके मंत्रियों को राजनीतिक कार्यपालिका कहते हैं और वे सरकार की सभी नीतियों के लिए उत्तरदायी होते हैं; लेकिन जो लोग रोज़-रोज़ के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होते हैं, उन्हें स्थायी कार्यपालिका कहते हैं।

मुझे याद है कोई कह रहा था कि लोकतंत्र में कार्यपालिका जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। क्या यह बड़ी कंपनियों के बड़े अधिकारियों के लिए भी सही है? क्या उन्हें हम मुख्य कार्यपालिका अधिकारी नहीं कहते? वे किसके प्रति उत्तरदायी है?

© NCERT not to be republished

कार्यपालिका कितने प्रकार की होती है?

सभी देशों में एक ही तरह की कार्यपालिका नहीं होती। आपने अमेरिका के राष्ट्रपति और इंग्लैंड की महारानी के बारे में सुना होगा। लेकिन अमेरिका के राष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य भारत के राष्ट्रपति की शक्तियों से बहुत अलग है। इसी प्रकार, इंग्लैंड की महारानी की शक्तियाँ भूटान के राजा से भिन्न है। भारत और फ्रांस दोनों ही देशों में प्रधानमंत्री है, पर उनकी भूमिकाएँ अलग-अलग हैं। ऐसा क्यों है?

खुद करें — खुद सीखें

सार्क सम्मेलन या जी-7 देशों की बैठक की एक फोटो प्राप्त करें और उन लोगों की सूची बनाएँ जिन्होंने उसमें भाग लिया। क्या आप सोच सकते हैं कि क्यों उन्हीं लोगों ने भाग लिया, अन्य लोगों ने क्यों नहीं?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हम इनमें से कुछ देशों की कार्यपालिकाओं की प्रकृति पर प्रकाश डालेंगे। अमेरिका में अध्यक्षात्मक व्यवस्था है और कार्यकारी शक्तियाँ राष्ट्रपति के पास हैं। कनाडा में संसदीय लोकतंत्र और संवैधानिक राजतंत्र है जिसमें महारानी एलिज़ाबेथ द्वितीय राज्य की प्रधान और प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान है। फ्रांस में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री अर्द्ध-अध्यक्षात्मक व्यवस्था के हिस्से हैं। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है पर उन्हें पद से हटा नहीं सकता क्योंकि वे संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। जापान में संसदीय व्यवस्था है जिसमें राजा देश का और प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान है। इटली में एक संसदीय व्यवस्था है जिसमें राष्ट्रपति देश का और प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान है। रूस में एक अर्द्ध-अध्यक्षात्मक व्यवस्था है जिसमें राष्ट्रपति देश का प्रधान और राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान है। जर्मनी में एक संसदीय व्यवस्था है जिसमें राष्ट्रपति देश का नाममात्र का प्रधान और चांसलर सरकार का प्रधान है।

अध्यक्षात्मक व्यवस्था में राष्ट्रपति राज्य और सरकार दोनों का ही प्रधान होता है। इस व्यवस्था में सिद्धांत और व्यवहार दोनों में राष्ट्रपति का पद बहुत शक्तिशाली होता है। ऐसी व्यवस्था अमेरिका, ब्राज़ील और लैटिन अमेरिका के अनेक देशों में पाई जाती है। संसदीय व्यवस्था में प्रधानमंत्री सरकार का प्रधान होता है। अधिकतर

© NCERT not to be republished

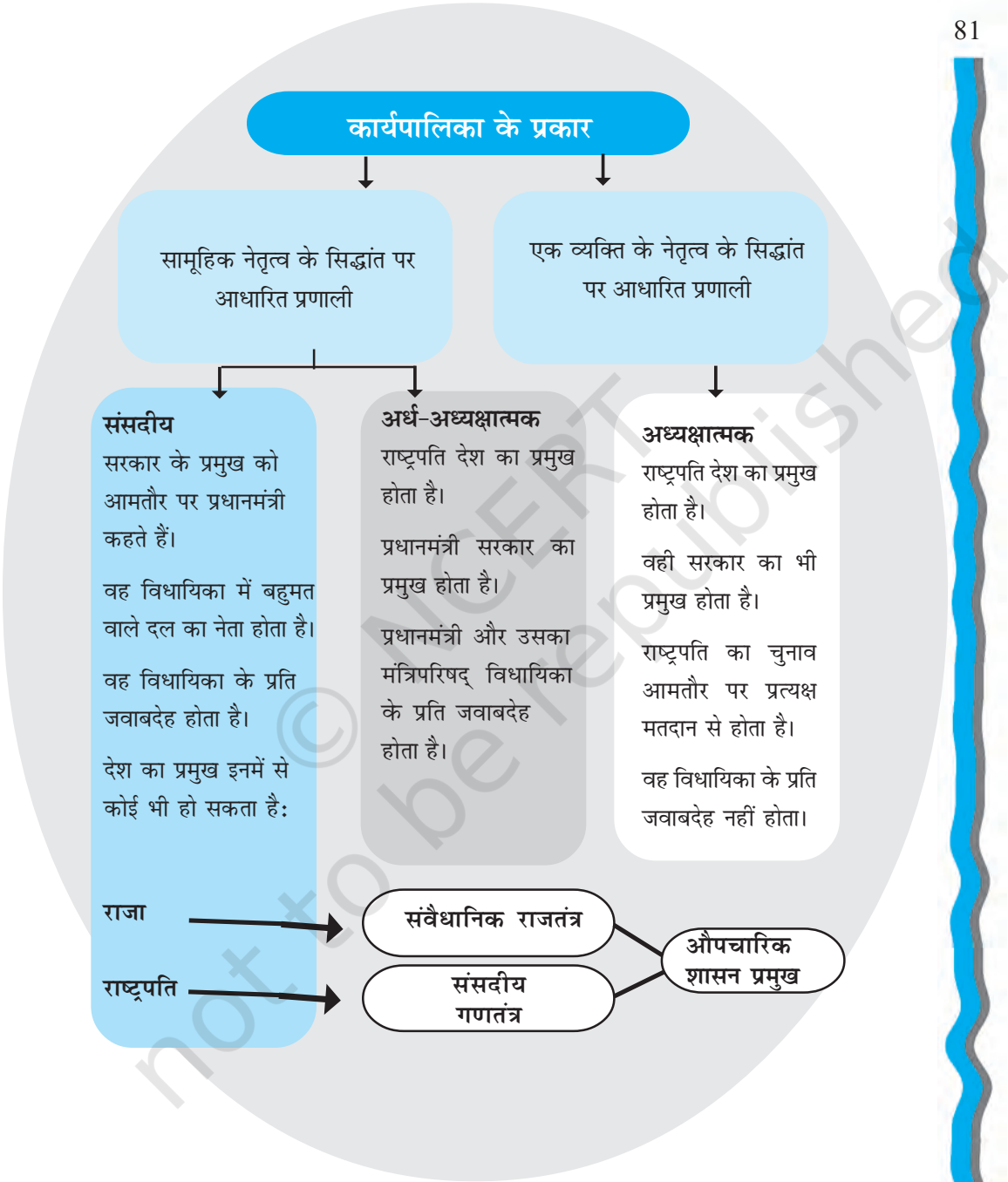

© NCERT not to be republished

श्रीलंका की अर्द्ध-अध्यक्षात्मक कार्यपालिका

1978 में श्रीलंका के संविधान का संशोधन करके अध्यक्षात्मक कार्यपालिका लागू की गई। इस प्रणाली में जनता प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति को चुनती है। यह संभव है कि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री एक ही दल या अलग-अलग दलों के हों।

संविधान राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ देता है। राष्ट्रपति संसद में बहुमत वाले दल के सदस्यों में से प्रधानमंत्री चुनता है। यद्यपि मंत्रियों के लिए संसद का सदस्य होना अनिवार्य है, लेकिन राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और दूसरे मंत्रियों को हटा सकता है। राज्य का निर्वाचित प्रधान और सशस्त्र सेनाओं का प्रधान सेनापति होने के अतिरिक्त, राष्ट्रपति सरकार का भी प्रधान होता है। राष्ट्रपति छः वर्ष के लिए चुना जाता है और उसे संसद की कुल सदस्य संख्या के दो तिहाई बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा ही हटाया जा सकता है। यदि वह प्रस्ताव संसद के कम से कम आधे सदस्यों द्वारा पास किया जाय और संसद का अध्यक्ष भी संतुष्ट हो कि आरोपों में दम है, तो संसद का अध्यक्ष उसे सर्वोच्च न्यायालय को भेज सकता है।

श्रीलंका के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की स्थिति भारत से कैसे भिन्न है? भारत और श्रीलंका के राष्ट्रपति के महाभियोग में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका की तुलना करें।

संसदीय व्यवस्थाओं में एक राष्ट्रपति या राजा होता है जो देश का औपचारिक या नाम मात्र का प्रधान होता है। इस व्यवस्था में राष्ट्रपति या राजा की भूमिका मुख्यतः अलंकारिक होती है और प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल के पास वास्तविक शक्ति होती है। जर्मनी, इटली, जापान, इंग्लैंड और पुर्तगाल आदि देशों में यह व्यवस्था है। अर्द्ध-अध्यक्षात्मक व्यवस्था में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों होते हैं लेकिन संसदीय व्यवस्था के विपरीत उसमें राष्ट्रपति को दैनिक कार्यों के संपादन में महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। इस व्यवस्था में, कभी-कभी राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों ही एक दल के हो सकते हैं, लेकिन जब कभी वे दो अलग-अलग दलों के होते हैं तो उनमें आपस में विरोध हो सकता है। फ्रांस, रूस और श्रीलंका में ऐसी ही व्यवस्था है।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

नेहा– यह तो बहुत सरल है। जिस देश में राष्ट्रपति है वहाँ अध्यक्षात्मक कार्यपालिका और जिस देश में प्रधानमंत्री है वहाँ संसदीय कार्यपालिका है।

आप नेहा को कैसे समझाएँगे कि ऐसा हमेशा सच नहीं होता।

भारत में संसदीय कार्यपालिका

जब भारत का संविधान लिखा जा रहा था तब तक भारत को 1919 और 1935 के अधिनियमों के अंतर्गत संसदीय व्यवस्था के संचालन का कुछ अनुभव हो चुका था। इस अनुभव ने हमें दिखाया कि संसदीय व्यवस्था के अंतर्गत कार्यपालिका को जन-प्रतिनिधियों के द्वारा प्रभावपूर्ण तरीके से नियंत्रित किया जा सकता है। भारतीय संविधान के निर्माता एक ऐसी सरकार सुनिश्चित करना चाहते थे जो जनता की अपेक्षाओं के प्रति संवेदनशील और उत्तरदायी हो। संसदीय कार्यपालिका की जगह दूसरा विकल्प अध्यक्षात्मक सरकार का था। लेकिन अध्यक्षात्मक कार्यपालिका मुख्य कार्यकारी के रूप में राष्ट्रपति पर बहुत बल देती है और उसे सभी शक्तियों का स्रोत मानती है। अध्यक्षात्मक कार्यपालिका में व्यक्ति पूजा का खतरा बना रहता है। संविधान निर्माता एक ऐसी सरकार चाहते थे जिसमें एक शक्तिशाली कार्यपालिका तो हो, लेकिन साथ-साथ उसमें व्यक्ति पूजा पर पर्याप्त अंकुश लगे हों। संसदीय व्यवस्था में ऐसी अनेक प्रक्रियाएँ हैं जो यह सुनिश्चित करती हैं कि कार्यपालिका, विधायिका या जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होगी और उनसे नियंत्रित भी। इसलिए, संविधान में राष्ट्रीय और प्रांतीय दोनों ही स्तरों पर संसदीय कार्यपालिका की व्यवस्था को स्वीकार किया गया।

इस व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रपति, भारत में राज्य का औपचारिक प्रधान होते हैं तथा प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् राष्ट्रीय स्तर पर सरकार

क्या हमारे देश में बहुत मजबूत प्रधानमंत्री नहीं हुए? क्या इसका मतलब यह है कि संसदीय व्यवस्था में भी किसी एक व्यक्ति की प्रधानता जारी रह सकती है? तब तो जनता और विधायिका को लगातार सचेत रहने की ज़रूरत है।

© NCERT not to be republished

चलाते हैं। राज्यों के स्तर पर राज्यपाल, मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद् मिलकर कार्यपालिका बनाते हैं।

भारत के संविधान में औपचारिक रूप से संघ की कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति को दी गई हैं। पर वास्तव में प्रधानमंत्री के नेतृत्व में बनी मंत्रिपरिषद् के माध्यम से राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग करता है। राष्ट्रपति 5 वर्ष के लिए चुना जाता है। राष्ट्रपति पद के लिए सीधे जनता के द्वारा निर्वाचन नहीं होता। राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष तरीके से होता है। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन आम नागरिक नहीं बल्कि निर्वाचित विधायक और सांसद करते हैं। यह निर्वाचन समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली और एकल संक्रमणीय मत के सिद्धांत के अनुसार होता है।

केवल संसद ही राष्ट्रपति को महाभियोग की प्रक्रिया के द्वारा उसके पद से हटा सकती है। पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि इस प्रक्रिया के लिए संसद में विशेष बहुमत की ज़रूरत पड़ती है। महाभियोग केवल संविधान के उल्लंघन के आधार पर लगाया जा सकता है।

अनुच्छेद 74 (1) – "राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

परंतु राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् से ऐसी सलाह ··· पर पुनर्विचार करने को कह सकता है और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा।"

इस कथन में जिस शब्द 'ही' का प्रयोग किया गया है, क्या आप उसका अर्थ जानते हैं? उसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने को बाध्य है। राष्ट्रपति की शक्ति पर उठे विवाद के कारण संविधान का संशोधन करके यह स्पष्ट कर दिया गया कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने को बाध्य है। बाद में एक और संशोधन के द्वारा यह निर्णय किया गया कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् को अपनी सलाह पर एक बार पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है, लेकिन उसे मंत्रिपरिषद् के द्वारा पुनर्विचार के बाद दी गई सलाह को मानना ही पड़ेगा।

© NCERT not to be republished

राष्ट्रपति की शक्ति और स्थिति

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि राष्ट्रपति सरकार का औपचारिक प्रधान है। उसे औपचारिक रूप से बहुत-सी कार्यकारी, विधायी, कानूनी और आपात् शक्तियाँ प्राप्त हैं। संसदीय व्यवस्था में राष्ट्रपति वास्तव में इन शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही करता है। प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् को लोकसभा में बहुमत प्राप्त होता है और वे ही वास्तविक कार्यकारी हैं। अधिकतर मामलों में राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद् की सलाह माननी पड़ती है।

"हमने राष्ट्रपति को कोई वास्तविक शक्ति नहीं दी लेकिन उसके पद को प्रभुतापूर्ण और गरिमामय बनाया है। संविधान उसे न तो वास्तविक कार्यकारी बनाना चाहता है और न ही एकदम नाममात्र का प्रधान। संविधान उसे एक ऐसा प्रधान बनाना चाहता है जो न शासक होता है और न शासन करता है; यह उसे एक महान संवैधानिक प्रधान बनाना चाहता है ...

जवाहर लाल नेहरू, संविधान सभा वाद-विवाद, खंड छः, पृ. 734

राष्ट्रपति के विशेषाधिकार

इन बातों की चर्चा के बाद क्या हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किसी भी परिस्थिति में राष्ट्रपति को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है? यह एक गलत मूल्यांकन होगा। संवैधानिक रूप से राष्ट्रपति को सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दों और मंत्रिपरिषद् की कार्यवाही के बारे में सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। प्रधानमंत्री का यह कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रपति द्वारा माँगी गई सभी सूचनाएँ उसे दे। राष्ट्रपति प्रायः प्रधानमंत्री को पत्र लिखता है और देश की समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त करता है।

मैं यहाँ कहने भर को बैठा दिया गया हूँ या मैं सचमुच के सवाल भी पूछ रहा हूँ? क्या इस पुस्तक के लेखकों ने मुझे अपने मनचाहे सवाल पूछने की शक्ति दी है या मैं वही सवाल पूछ रहा हूँ जो उनके मन में उठ रहे हैं?

© NCERT not to be republished

राष्ट्रपति के लिए किताबों में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों का प्रयोग किया जाता है। क्या कभी कोई महिला भी राष्ट्रपति हुई है?

इसके अतिरिक्त, कम से कम तीन अन्य अवसरों पर राष्ट्रपति अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करता है। प्रथम, जैसा कि आप पहले ही देख चुके हैं कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह को लौटा सकता है और उसे अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है। ऐसा करने में राष्ट्रपति अपने विवेक का प्रयोग करता है। जब राष्ट्रपति को ऐसा लगता है कि सलाह में कुछ गलती है या कानूनी रूप से कुछ कमियाँ हैं या फ़ैसला देश के हित में नहीं है, तो वह मंत्रिपरिषद् से अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है। यद्यपि मंत्रिपरिषद् पुनर्विचार के बाद भी उसे वही सलाह दुबारा दे सकती है और तब राष्ट्रपति उसे मानने के लिए बाध्य भी होगा, तथापि राष्ट्रपति के द्वारा पुनर्विचार का आग्रह अपने आप में काफी मायने रखता है। अतः यह एक तरीका है जिसमें राष्ट्रपति अपने विवेक के आधार पर अपनी शक्ति का प्रयोग करता है।

दूसरे, राष्ट्रपति के पास वीटो की शक्ति (निषेधाधिकार) होती है जिससे वह संसद द्वारा पारित विधेयकों (धन विधेयकों को छोड़ कर) पर स्वीकृति देने में विलंब कर सकता है या स्वीकृति देने से मना कर सकता है। संसद द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक को कानून बनने से पूर्व राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। राष्ट्रपति उसे संसद को लौटा सकता है

हमने देखा कि विधेयकों को स्वीकृति देने के संबंध में राष्ट्रपति पर कोई समय सीमा नहीं है। क्या आपको पता है कि इस सिलसिले में एक घटना घट चुकी है? 1986 में संसद ने 'भारतीय पोस्ट ऑफिस (संशोधन) विधेयक' पारित किया। अनेक लोगों ने इसकी आलोचना की क्योंकि विधेयक प्रेस की स्वतंत्रता को बाधित करता था। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने उस पर कोई निर्णय नहीं लिया। उनका कार्यकाल समाप्त होने के बाद अगले राष्ट्रपति वेंकटरमण ने उसे पुनर्विचार के लिए संसद को लौटा दिया। तब तक, वह सरकार बदल गई जिसने विधेयक पेश किया था और 1989 में एक नई सरकार चुन कर आ गई थी। यह दूसरे दलों की गठबंधन सरकार थी और उसने इस विधेयक को दोबारा संसद में पेश ही नहीं किया। इस प्रकार, जैल सिंह के द्वारा विधेयक को स्वीकृति देने के निर्णय में विलंब करने का वास्तविक परिणाम यह हुआ कि यह विधेयक कानून न बन सका।

© NCERT not to be republished

और उसे उस पर पुनर्विचार के लिए कह सकता है। वीटो की यह शक्ति सीमित है क्योंकि संसद उसी विधेयक को दुबारा पारित कर दे और राष्ट्रपति के पास भेजे, तो राष्ट्रपति को उस पर अपनी स्वीकृति देनी पड़ेगी। लेकिन संविधान में राष्ट्रपति के लिए ऐसी कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है जिसके अंदर ही उस विधेयक को पुनर्विचार के लिए लौटाना पड़े। इसका अर्थ यह हुआ कि राष्ट्रपति किसी भी विधेयक को बिना किसी समय सीमा के अपने पास लंबित रख सकता है। इससे राष्ट्रपति को अनौपचारिक रूप से, अपने वीटो को प्रभावी ढंग से प्रयोग करने का अवसर मिल जाता है। इसे कई बार 'पॉकेट वीटो' भी कहा जाता है।

तीसरे प्रकार का विशेषाधिकार राजनीतिक परिस्थितियों के कारण पैदा होता है। औपचारिक रूप से राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है। सामान्यतः अपनी संसदीय व्यवस्था में लोकसभा के बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया जाता है, इसलिए उसकी नियुक्ति में राष्ट्रपति के विशेषाधिकार का कोई प्रश्न ही नहीं। लेकिन उस परिस्थिति की कल्पना करें जिसमें चुनाव के बाद किसी भी नेता को लोकसभा में बहुमत प्राप्त न हो। इसके अतिरिक्त यह भी सोचें कि यदि गठबंधन बनाने के प्रयासों के बाद भी दो या तीन नेता यह दावा करें कि उन्हें लोकसभा में बहुमत प्राप्त है, तो क्या होगा? तब राष्ट्रपति को यह निर्णय करना है कि वह किसे प्रधानमंत्री नियुक्त करे। इस परिस्थिति में राष्ट्रपति को अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर यह निर्णय लेना होता है कि किसे बहुमत का समर्थन प्राप्त है या कौन सरकार बना सकता है और सरकार चला सकता है। 1989 के बाद से प्रमुख राजनीतिक परिवर्तनों के कारण राष्ट्रपति के पद का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। 1989 से 1998

प्रधानमंत्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति की भूमिका

1977 के बाद भारत की दलीय राजनीति में प्रतिस्पर्धा काफी बढ़ गई है। और ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब लोकसभा में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला। इन परिस्थितियों में राष्ट्रपति ने क्या किया? मार्च 1998 के चुनाव में किसी भी दल या दलीय गठबंधन को बहुमत नहीं मिला। भाजपा और उसके सहयोगी दलों को कुल 251 सीटें मिलीं जो बहुमत से 21 कम थी। राष्ट्रपति नारायणन ने एक लंबी प्रक्रिया अपनाई। उन्होंने गठबंधन के नेता अटल बिहारी बाजपेयी से "अपने दावे के समर्थन में संबंधित राजनीतिक दलों के दस्तावेज़ प्रस्तुत करने" को कहा। इससे भी आगे जाकर राष्ट्रपति ने वाजपेयी को पदग्रहण करने के मात्र दस दिनों के भीतर विश्वास मत प्राप्त करने को कहा।

© NCERT not to be republished

तक हुए चार संसदीय चुनावों में किसी भी एक दल या दलीय गठबंधन को लोकसभा में स्पष्ट बहुमत नहीं मिल सका। इन परिस्थितियों की माँग थी कि राष्ट्रपति हस्तक्षेप करके या तो सरकार का गठन कराए या फिर प्रधानमंत्री द्वारा लोकसभा में बहुमत सिद्ध न कर पाने के बाद उसकी सलाह पर लोक सभा भंग कर दे।

अत: यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति का विशेषाधिकार राजनीतिक परिस्थितियों पर आधारित होता है। जब सरकार स्थायी न हो और गठबंधन सरकार सत्ता में हों तब राष्ट्रपति के हस्तक्षेप की संभावनाएँ बढ़ जाती है।

राष्ट्रपति मुख्यत: एक औपचारिक शक्ति वाला पद है और वह राष्ट्र का अलंकारिक प्रधान है। ऐसे में आप पूछ सकते हैं कि तब हमें राष्ट्रपति की क्या आवश्यकता है? संसदीय व्यवस्था में मंत्रिपरिषद् विधायिका में बहुमत के समर्थन पर निर्भर होती है। इसका अर्थ यह है कि मंत्रिपरिषद् को कभी भी हटाया जा सकता है और तब उसकी जगह एक नई मंत्रिपरिषद् की नियुक्ति करनी पड़ेगी। ऐसी परिस्थिति में एक ऐसे राष्ट्र-प्रमुख की ज़रूरत पड़ती है जिसका कार्यकाल स्थायी हो, जिसके पास प्रधानमंत्री को नियुक्त करने की शक्ति हो और जो सांकेतिक रूप से पूरे देश का प्रतिनिधित्व कर सके। सामान्य परिस्थितियों में राष्ट्रपति की यही भूमिका है। लेकिन जब किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तब राष्ट्रपति पर निर्णय लेने और देश की सरकार को चलाने के लिए प्रधानमंत्री को नियुक्त करने की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी होती है।

भारत का उपराष्ट्रपति

उपराष्ट्रपति पाँच वर्ष के लिए चुना जाता है। उसको भी उसी तरह चुनते हैं जैसे राष्ट्रपति को। केवल इतना अंतर है कि उसके निर्वाचक मंडल में राज्य विधान सभा के सदस्य नहीं होते। उपराष्ट्रपति को हटाने के लिए राज्य सभा को अपने बहुमत से इस आशय का प्रस्ताव पास करना पड़ता है और उस प्रस्ताव पर लोकसभा की सहमति लेनी पड़ती है। उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन अध्यक्ष होता है और राष्ट्रपति की मृत्यु, त्यागपत्र, महाभियोग द्वारा हटाए जाने या अन्य किसी कारण से रिक्त होने पर वह कार्यवाहक राष्ट्रपति का काम करता है। उपराष्ट्रपति तभी तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में काम करता है जब तक कोई नया राष्ट्रपति नहीं चुन लिया जाता। फखरुद्दीन अली अहमद की मृत्यु के बाद बीडी जत्ती तब तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में काम करते रहे जब तक नए राष्ट्रपति का चुनाव नहीं हो गया।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

कल्पना करें कि प्रधानमंत्री जिस राज्य में इस आधार पर राष्ट्रपति शासन लगाना चाहता है कि वहाँ की सरकार दलितों पर अत्याचार रोकने में विफल रही है। राष्ट्रपति की सोच कुछ अलग है। उसका कहना है कि राष्ट्रपति शासन का अपवाद स्वरूप ही प्रयोग करना चाहिए। इस स्थिति में राष्ट्रपति के पास निम्नलिखित में से कौन विकल्प है?

(क) वह प्रधानमंत्री को बताए कि राष्ट्रपति शासन की घोषणा करने वाले आदेश पर वह हस्ताक्षर नहीं करेगा।

(ख) प्रधानमंत्री को बर्खास्त कर दे।

(ग) वह प्रधानमंत्री से वहाँ केंद्रीय रिज़र्व पुलिस बल भेजने को कहे।

(घ) एक प्रेस वक्तव्य दे कि क्यों प्रधानमंत्री गलत है।

(ङ) इस संबंध में प्रधानमंत्री से बातचीत करे और उसे ऐसा करने से रोके परंतु यदि प्रधानमंत्री दृढ़ रहे तब उस पर हस्ताक्षर कर दे।

कार्टून बूझें

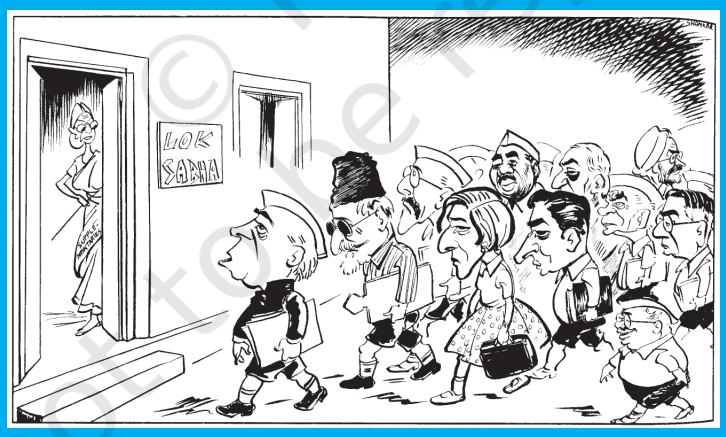

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

22 अगस्त 1954

प्रधानमंत्री के बिना कोई मंत्रिपरिषद् नहीं होती। यह कार्टून बताता है कि किस तरह प्रधानमंत्री सरकार की 'अगुआइ' करता है।

© NCERT not to be republished

प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद्

भारत के प्रधानमंत्री पद का उल्लेख किए बिना भारतीय सरकार या राजनीति की कोई चर्चा नहीं हो सकती। क्या आप सोच सकते हैं कि ऐसा क्यों?

इस अध्याय में आप पहले पढ़ चुके हैं कि राष्ट्रपति केवल मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है। प्रधानमंत्री इस मंत्रिपरिषद् का प्रधान है। अतः मंत्रिपरिषद् के प्रधान के रूप में प्रधानमंत्री अपने देश की सरकार का सबसे महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी हो जाता है।

संसदीय शासन में यह ज़रूरी है कि प्रधानमंत्री को लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो। बहुमत का यह समर्थन भी प्रधानमंत्री को बहुत शक्तिशाली बना देता है। जैसे ही प्रधानमंत्री बहुमत का समर्थन खो देता है, वह अपना पद भी खो देता है। स्वतंत्रता के बाद कई वर्षों तक काँग्रेस पार्टी का लोकसभा में बहुमत बना रहा, जिससे उसी का नेता प्रधानमंत्री बनता रहा। 1989 से अनेक ऐसे अवसर आए जब लोकसभा में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला। अनेक राजनीतिक दलों को तालमेल कर गठबंधन बनाना पड़ा जिसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो। इस परिस्थिति में जो नेता सहयोगी दलों को अधिकतर स्वीकार होता है वह प्रधानमंत्री बनता है। औपचारिक रूप से, जिस नेता को लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है, राष्ट्रपति उसे प्रधानमंत्री नियुक्त करता है।

प्रधानमंत्री तय करता है कि उसकी मंत्रिपरिषद् में कौन लोग मंत्री होंगे। प्रधानमंत्री विभिन्न मंत्रियों में पद-स्तर और मंत्रालयों का आबंटन करता है। मंत्रियों को उनकी वरिष्ठता और राजनीतिक महत्त्व के अनुसार मंत्रिमंडल का मंत्री, राज्यमंत्री या उपमंत्री बनाया जाता है। इसी प्रकार, राज्यों में मुख्यमंत्री अपने दल या सहयोगी दलों से मंत्री चुनते हैं। प्रधानमंत्री और सभी मंत्रियों के लिए संसद का सदस्य

कार्टून बूझें

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

क्या सिर्फ मंत्री-पद ही मायने रखता है? कार, बंगला, नौकर, यात्रा, विदेश-भ्रमण, सुरक्षा और सचिव वगैरह आपके लिए कोई मायने नहीं रखते?

लोग मंत्री बनना क्यों चाहते हैं? इस कार्टून में शायद यह बताया गया है कि लोग सुख-सुविधा उठाने के लिए मंत्री बनना चाहते हैं। लेकिन तब किन्हीं खास मंत्रालयों को पाने के लिए होड़ क्यों मची रहती है?

© NCERT not to be republished

होना अनिवार्य है। संसद का सदस्य हुए बिना यदि कोई व्यक्ति मंत्री या प्रधानमंत्री बन जाता है तो उसे छः महीने के भीतर ही संसद के सदस्य के रूप में निर्वाचित होना पड़ता है।

संविधान सभा में अनेक सदस्यों का विचार था कि मंत्रियों का चयन विधायिका को करना चाहिए न कि प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री को –
मेरे दृष्टिकोण से प्रांतों के लिए वह स्विस प्रणाली सर्वोत्तम व्यवस्था है जिसमें विधायिका कार्यपालिका को एक निश्चित समय ··· के लिए चुनती है। ··· एकल संक्रमणीय मत प्रणाली वह सर्वोत्तम व्यवस्था है जो कार्यपालिका की नियुक्ति के लिए प्रयोग की जा सकती है क्योंकि उसमें सभी हितों का प्रतिनिधित्व होगा और विधायिका का कोई भी दल यह महसूस न कर सकेगा कि उसका प्रतिनिधित्व नहीं है।

बेगम ऐज़ाज़ रसूल
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड IV, पृष्ठ 631, 17 जुलाई 1947

मंत्रिपरिषद् का आकार

संविधान के 91वें संशोधन अधिनियम (2003) के पहले, मंत्रिपरिषद् का आकार समय की माँग और परिस्थितियों के अनुरूप तय किया जाता था। लेकिन ऐसे में मंत्रिपरिषद् का आकार बहुत बड़ा हो जाता था। इसके अतिरिक्त, जब किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता था, तब वह संसद के अन्य सदस्यों को मंत्री पद का लालच देकर समर्थन हासिल करने की कोशिश करता था क्योंकि तब मंत्रिपरिषद् की सदस्य संख्या पर कोई प्रतिबंध न था। यह अनेक राज्यों में भी हो रहा था। अतः संविधान का संशोधन करके यह व्यवस्था की गई कि मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या लोक सभा (या राज्यों में विधान सभा) की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक न होगी।

विधायिका वाले अध्याय में आप विस्तार से उन तरीकों के बारे में पढ़ेंगे जिनसे संसद कार्यपालिका को नियंत्रित करती है। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि संसदीय शासन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कार्यपालिका सतत रूप से विधायिका के नियंत्रण और देख-रेख में रहती है।

मंत्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। इस प्रावधान का अर्थ है कि जो सरकार लोकसभा में विश्वास खो देती है उसे त्यागपत्र देना पड़ता है।

© NCERT not to be republished

इस सिद्धांत के अनुसार मंत्रिपरिषद् संसद की एक कार्यकारी समिति है और वह संसद के प्रतिनिधि के रूप में सामूहिक रूप से शासन करती है। सामूहिक उत्तरदायित्व मंत्रिमंडल की एकजुटता के सिद्धांत पर आधारित है। इसकी भावना यह है कि यदि किसी एक मंत्री के विरुद्ध भी अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाए तो संपूर्ण मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है। इसका अर्थ यह भी है कि यदि कोई मंत्री मंत्रिमंडल की नीति या निर्णय से सहमत नहीं, तो उसे उस निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिए या त्यागपत्र दे देना चाहिए। जिस नीति के बारे में सामूहिक उत्तरदायित्व हो उसे मानना या उसे लागू करना सभी मंत्रियों के लिए ज़रूरी है।

भारत में, प्रधानमंत्री का सरकार में स्थान सर्वोपरि है। बिना प्रधानमंत्री के मंत्रिपरिषद् का कोई अस्तित्त्व नहीं है। मंत्रिपरिषद् तभी अस्तित्व में आती है जब प्रधानमंत्री अपने पद का शपथ ग्रहण कर लेता है। प्रधानमंत्री की मृत्यु या त्यागपत्र से पूरी मंत्रिपरिषद् ही भंग हो जाती है जबकि किसी मंत्री की मृत्यु, हटाए जाने या त्यागपत्र के कारण मंत्रिपरिषद् में केवल एक स्थान खाली होता है। प्रधानमंत्री एक तरफ मंत्रिपरिषद् तथा दूसरी ओर राष्ट्रपति और संसद के बीच एक सेतु का काम करता है। इसी भूमिका के कारण पंडित नेहरू ने प्रधानमंत्री को सरकार की केंद्रीय धुरी की संज्ञा दी। प्रधानमंत्री का यह संवैधानिक दायित्व भी है कि वह सभी संघीय मामलों के प्रशासन और प्रस्तावित कानूनों के बारे में राष्ट्रपति को सूचित करे। प्रधानमंत्री सरकार के सभी महत्त्वपूर्ण निर्णयों में सम्मिलित होता है और सरकार की नीतियों के बारे में निर्णय लेता है। इस प्रकार, प्रधानमंत्री की शक्तियों के अनेक स्रोत हैं, जैसे – मंत्रिपरिषद् पर नियंत्रण, लोकसभा का नेतृत्व, अधिकारी जमात पर आधिपत्य, मीडिया तक पहुँच, चुनाव के दौरान उसके व्यक्तित्व का उभार, तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और विदेश यात्राओं के दौरान राष्ट्रीय नेता की छवि आदि।

लेकिन, प्रधानमंत्री की शक्तियाँ और उनका प्रयोग तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जब भी किसी एक

क्या कोई आदमी ताकतवर होने के चलते प्रधानमंत्री बनता है या प्रधानमंत्री बनने के बाद वह ताकतवर हो जाता है?

© NCERT not to be republished

राजनीतिक दल को लोकसभा में बहुमत मिला, तब प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल की शक्तियाँ निर्विवाद रहीं। परंतु जब राजनीतिक दलों के गठबंधन की सरकारें बनीं तब ऐसा नहीं रहा। 1989 से हमने भारत में अनेक गठबंधन सरकारों को देखा है। इनमें से कई सरकारें लोकसभा की पूरी अवधि के लिए सत्ता में न रह सकीं। बहुमत समाप्त होने के कारण उन्होंने त्यागपत्र दे दिया या वे हटा दी गईं। इन घटनाओं से संसदीय शासन का काम-काज प्रभावित हुआ है।

इस सिलसिले में पहली बात तो यह है कि इन घटनाओं से प्रधानमंत्री के चयन में राष्ट्रपति के विशेषाधिकारों की भूमिका बढ़ी है। दूसरे, इस अवधि में गठबंधन राजनीति के कारण राजनीतिक सहयोगियों में परामर्श की प्रवृत्ति बढ़ी है जिससे प्रधानमंत्री की सत्ता में कुछ सेंध लगी है। तीसरे, इससे प्रधानमंत्री के अनेक विशेषाधिकारों जैसे मंत्रियों का चयन और उनके पद-स्तर तथा मंत्रालय के चयन पर भी कुछ अंकुश लगा है। चौथे, प्रधानमंत्री सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को भी अकेले तय नहीं कर सकता। चुनाव के पूर्व और चुनाव के बाद विभिन्न विचारधारा वाले अनेक राजनीतिक दल सहयोग करके सरकार बनाते हैं। सहयोगी दलों के बीच काफी बातचीत और समझौते के बाद ही नीतियाँ बन पाती हैं। इस पूरी प्रक्रिया में प्रधानमंत्री को एक नेता से अधिक एक मध्यस्थ की भूमिका निभानी पड़ती है।

कुछेक बदलावों के साथ राज्यों में भी ठीक इसी तरह की लोकतांत्रिक कार्यपालिका होती है। सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि राज्य में एक राज्यपाल होता है जो, (केंद्रीय सरकार की सलाह पर) राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किया जाता है। यद्यपि प्रधानमंत्री की ही तरह मुख्यमंत्री भी विधान सभा में बहुमत दल

कार्टून बूझें

मेरी परेशानियाँ खत्म नहीं हुईं, मैंने विश्वास मत जीत लिया है।

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

मुख्यमंत्री विश्वासमत जीतकर भी खुश नहीं हैं। वे कह रहे हैं कि विश्वासमत जीतने के बावजूद उनकी परेशानियां बरकरार है। क्या आप सोच सकते हैं, वे ऐसा क्यों कह रहे हैं?

© NCERT not to be republished

का नेता होता है, पर राज्यपाल के पास ज़्यादा विवेकाधीन शक्तियाँ होती हैं। बहरहाल, राज्य के स्तर पर भी संसदनात्मक व्यवस्था के प्रमुख सिद्धांत लागू होते हैं।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

मान लीजिए कि प्रधानमंत्री को मंत्रिपरिषद् का गठन करना है। वह क्या करेगा/करेगी –

(क) विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों का चयन।

(ख) केवल अपनी पार्टी के लोगों का चयन ।

(ग) केवल व्यक्तिगत रूप से निष्ठावान और विश्वसनीय लोगों का चयन।

(घ) केवल सरकार के समर्थकों का चयन।

(ङ) मंत्री बनने की होड़ में शामिल व्यक्तियों राजनीतिक ताकत का अंदाज़ा लगाकर ही उनका चयन।

स्थायी कार्यपालिका – नौकरशाही

मंत्रियों के निर्णय को कौन लागू करता है?

शासन के कार्यकारी अंग में प्रधानमंत्री, मंत्रिगण और नौकरशाही या प्रशासनिक मशीनरी का एक विशाल संगठन सम्मिलित होता है। इस ढाँचे और सैन्य सेवाओं में अंतर करने के लिए इसे नागरिक सेवा कहते हैं। सरकार के स्थाई कर्मचारी के रूप में कार्य करने वाले प्रशिक्षित और प्रवीण अधिकारी नीतियों को बनाने तथा उसे लागू करने में मंत्रियों का सहयोग करते हैं। लोकतंत्र में निर्वाचित प्रतिनिधि और मंत्रिगण सरकार के प्रभारी होते हैं और प्रशासन उनके नियंत्रण और देख-रेख में होता है। संसदीय शासन में, विधायिका प्रशासन को नियंत्रित करती है। यह मंत्री की ज़िम्मेदारी है कि वह प्रशासन पर राजनीतिक नियंत्रण बनाए रखे। भारत में एक दक्ष प्रशासनिक मशीनरी मौजूद है। लेकिन यह मशीनरी राजनीतिक रूप से उत्तरदायी है। नौकरशाही से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह राजनीतिक रूप से तटस्थ हो। इसका अर्थ यह है कि

© NCERT not to be republished

नौकरशाही नीतियों पर विचार करते समय किसी राजनीतिक दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करेगी। प्रजातंत्र में यह संभव है कि कोई पार्टी चुनाव में हार जाए और नई सरकार पिछली सरकार की नीतियों की जगह नई नीतियाँ अपनाना चाहे। ऐसी स्थिति में, प्रशासनिक मशीनरी की ज़िम्मेदारी है कि वह नई सरकार को अपनी नीति बनाने और उसे लागू करने में मदद करे।

आज भारतीय नौकरशाही का स्वरूप बहुत जटिल हो गया है। इसमें अखिल भारतीय सेवाएँ, प्रांतीय सेवाएँ, स्थानीय सरकार के कर्मचारी और लोक उपक्रमों के तकनीकी तथा प्रबंधकीय अधिकारी सम्मिलित हैं। हमारे संविधान निर्माता गैर-राजनीतिक और व्यावसायिक रूप से दक्ष प्रशासनिक मशीनरी के महत्त्व को जानते थे। वे सिविल सेवा या नौकरशाही के सदस्यों को बिना किसी भेदभाव के योग्यता के आधार पर चयनित करना चाहते थे। अतः भारत सरकार के लिए सिविल सेवा के सदस्यों की भर्ती की प्रक्रिया का कार्य संघ लोक सेवा आयोग को सौंपा गया है। ऐसे ही लोक सेवा आयोग राज्यों में भी बनाए गए हैं। लोक सेवा आयोग के सदस्यों को एक निश्चित कार्यकाल के लिए नियुक्त किया जाता है। उनको सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के जाँच के आधार पर ही निलंबित या अपदस्थ किया जा सकता है। दक्षता और योग्यता को आधार बनाकर भर्ती की जाती है, लेकिन संविधान यह भी सुनिश्चित करता है कि पिछड़े वर्गों के साथ-साथ समाज के सभी वर्गों को सरकारी नौकरशाही का हिस्सा बनने का मौका मिले। इस उद्देश्य के लिए, संविधान दलित और आदिवासियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था करता है। बाद में महिलाओं और अन्य पिछड़ी जातियों को भी आरक्षण दिया गया। इन प्रावधानों से यह सुनिश्चित होता है कि नौकरशाही में सभी समूहों का प्रतिनिधित्व होगा तथा सामाजिक असमानताएँ सिविल सेवाओं में भर्ती के मार्ग में रोड़ा नहीं बनेंगी।

भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएएस) तथा भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) के लिए उम्मीदवारों का चयन संघ लोक सेवा आयोग करता है। ये अधिकारी प्रांतीय स्तर पर शीर्षस्थ

हाँ, मुझे मालूम है कि अधिकारी लोगों की मदद के लिए हैं, लेकिन लोग सदा इन अधिकारियों से डरे रहते हैं और अधिकारियों का व्यवहार भी शासकों जैसा होता है।

© NCERT not to be republished

सिविल सेवाओं का वर्गीकरण

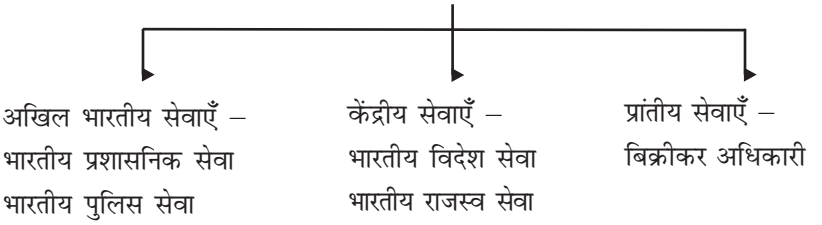

नौकरशाही की रीढ़ होते हैं। आपको शायद पता हो कि एक जिले का जिलाधिकारी (कलेक्टर) उस जिले में सरकार का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है। क्या आप जानते हैं कि जिलाधिकारी सामान्यत: आईएएस स्तर का अधिकारी होता है और वह केंद्र सरकार द्वारा बनाई गई सेवा शर्तों से नियंत्रित होता है। एक आईएएस अथवा आईपीएस अधिकारी किसी एक राज्य के संबद्ध कर दिया जाता है, जहाँ वह राज्य सरकार की देख-रेख में काम करता है। लेकिन आईएएस और आईपीएस अधिकारी केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं और वे केंद्र सरकार की सेवा में वापस जा सकते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि केवल केंद्रीय सरकार ही उनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई कर सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि राज्यों के प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी केंद्रीय सरकार की देख-रेख और नियंत्रण में रहते हैं। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा नियुक्त आईएएस और आईपीएस अधिकारियों के अतिरिक्त राज्य के प्रशासन में राज्य लोक सेवा आयोगों द्वारा नियुक्त अधिकारियों का भी योगदान होता है। जैसा कि हम आगे संघवाद वाले अध्याय में पढ़ेंगे, नौकरशाही की यह विशेषता राज्यों के प्रशासन पर केंद्रीय सरकार के नियंत्रण को मजबूत कर देती है।

नौकरशाही वह माध्यम है जिसके द्वारा सरकार की लोकहितकारी नीतियाँ जनता तक पहुँचती है। पर नौकरशाही इतनी शक्तिशाली होती है कि आम आदमी सरकारी अधिकारियों तक पहुँचने से डरता है। यह लोगों का आम अनुभव है कि नौकरशाही सामान्य नागरिकों की माँगों और आशाओं के प्रति संवेदनशील नहीं होती। लेकिन जब लोकतांत्रिक ढंग से चुनी हुई सरकार नौकरशाही को नियंत्रित करती है, तब इनमें से कुछ समस्याओं को प्रभावी तरीके से हल किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर, ज़्यादा राजनीतिक हस्तक्षेप से नौकरशाही राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना बन जाती है। हालाँकि संविधान ने भर्ती के लिए एक स्वतंत्र मशीनरी बनायी लेकिन अनेक लोगों का मानना है कि सरकारी कर्मचारियों को अपने कार्यों के संपादन में राजनीतिक हस्तक्षेप से बचाने की कोई व्यवस्था नहीं है। यह भी महसूस किया जाता है कि जनता के प्रति नौकरशाही का उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त प्रावधान नहीं है। पर, यह

© NCERT not to be republished

आशा की जाती है कि सूचना का अधिकार जैसे कदम नौकरशाही को और अधिक उत्तरदायी और संवेदनशील बना सकेंगे।

निष्कर्ष

आधुनिक कार्यपालिका सरकार की एक अत्यंत शक्तिशाली संस्था है। सभी प्रकार की सरकारों में, सरकार के अन्य अंगों की अपेक्षा कार्यपालिका ज़्यादा शक्तिशाली होती है। इससे कार्यपालिका पर लोकतांत्रिक नियंत्रण की आवश्यकता बढ़ जाती है। हमारे संविधान निर्माताओं की यह दूर-दृष्टि ही थी कि उन्होंने कार्यपालिका को विधायिका के नियमित नियंत्रण और देख-रेख में रखा। इस प्रकार, एक संसदीय कार्यपालिका का चयन किया गया। समय-समय पर होने वाले चुनाव, व्यक्तियों के प्रयोग पर संवैधानिक अंकुशों और लोकतांत्रिक राजनीति ने यह सुनिश्चित किया है कि भारत में कार्यपालिका अनुत्तरदायी न होगी।

प्रश्नावली

1. संसदीय कार्यपालिका का अर्थ होता है –
   (क) जहाँ संसद हो वहाँ कार्यपालिका का होना
   (ख) संसद द्वारा निर्वाचित कार्यपालिका
   (ग) जहाँ संसद कार्यपालिका के रूप में काम करती है
   (घ) ऐसी कार्यपालिका जो संसद के बहुमत के समर्थन पर निर्भर हो

2. निम्नलिखित संवाद पढ़ें। आप किस तर्क से सहमत हैं और क्यों?
   अमित – संविधान के प्रावधानों को देखने से लगता है कि राष्ट्रपति का काम सिर्फ ठप्पा मारना है।
   शमा – राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है। इस कारण उसे प्रधानमंत्री को हटाने का भी अधिकार होना चाहिए।
   राजेश – हमें राष्ट्रपति की ज़रूरत नहीं। चुनाव के बाद, संसद बैठक बुलाकर एक नेता चुन सकती है जो प्रधानमंत्री बने।

© NCERT not to be republished

3. निम्नलिखित को सुमेलित करें –

(क) भारतीय विदेश सेवा	जिसमें बहाली हो उसी प्रदेश में काम करती है।
(ख) प्रादेशिक लोक सेवा	केंद्रीय सरकार के दफ़्तरों में काम करती है जो या तो देश की राजधानी में होते हैं या देश में कहीं और।
(ग) अखिल भारतीय सेवाएँ	जिस प्रदेश में भेजा जाए उसमें काम करती है, इसमें प्रतिनियुक्ति पर केंद्र में भी भेजा जा सकता है।
(घ) केंद्रीय सेवाएँ	भारत के लिए विदेशों में कार्यरत।

4. उस मंत्रालय की पहचान करें जिसने निम्नलिखित समाचार को जारी किया होगा। यह मंत्रालय प्रदेश की सरकार का है या केंद्र सरकार का और क्यों?

(क) आधिकारिक तौर पर कहा गया है कि सन् 2004-05 में तमिलनाडु पाठ्यपुस्तक निगम कक्षा 7, 10 और 11 की नई पुस्तकें जारी करेगा।

(ख) भीड़ भरे तिरूवल्लुर-चेन्नई खंड में लौह-अयस्क निर्यातकों की सुविधा के लिए एक नई रेल लूप लाइन बिछाई जाएगी। नई लाइन लगभग 80 कि.मी. की होगी। यह लाइन पुट्टुर से शुरु होगी और बंदरगाह के निकट अतिपट्टू तक जाएगी।

(ग) रमयमपेट मंडल में किसानों की आत्महत्या की घटनाओं की पुष्टि के लिए गठित तीन सदस्यीय उप-विभागीय समिति ने पाया कि इस माह आत्महत्या करने वाले दो किसान फ़सल के मारे जाने से आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहे थे।

5. प्रधानमंत्री की नियुक्ति करने में राष्ट्रपति –

(क) लोकसभा के सबसे बड़े दल के नेता को चुनता है।

(ख) लोकसभा में बहुमत अर्जित करने वाले गठबंधन-दलों में सबसे बड़े दल के नेता को चुनता है।

(ग) राज्यसभा के सबसे बड़े दल के नेता को चुनता है।

(घ) गठबंधन अथवा उस दल के नेता को चुनाता है जिसे लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो।

© NCERT not to be republished

6. इस चर्चा को पढ़कर बताएँ कि कौन-सा कथन भारत पर सबसे ज़्यादा लागू होता है –

आलोक – प्रधानमंत्री राजा के समान है। वह हमारे देश में हर बात का फ़ैसला करता है।

शेखर – प्रधानमंत्री सिर्फ 'बराबरी के सदस्यों में प्रथम' है। उसे कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं। सभी मंत्रियों और प्रधानमंत्री के अधिकार बराबर हैं।

बॉबी – प्रधानमंत्री को दल के सदस्यों तथा सरकार को समर्थन देने वाले सदस्यों का ध्यान रखना पड़ता है। लेकिन कुल मिलाकर देखें तो नीति-निर्माण तथा मंत्रियों के चयन में प्रधानमंत्री की बहुत ज़्यादा चलती है।

7. क्या मंत्रिमंडल की सलाह राष्ट्रपति को हर हाल में माननी पड़ती है? आप क्या सोचते हैं? अपना उत्तर अधिकतम 100 शब्दों में लिखें।

8. संसदीय-व्यवस्था ने कार्यपालिका को नियंत्रण में रखने के लिए विधायिका को बहुत-से अधिकार दिए हैं। कार्यपालिका को नियंत्रित करना इतना ज़रूरी क्यों है? आप क्या सोचते हैं?

9. कहा जाता है कि प्रशासनिक-तंत्र के कामकाज में बहुत ज़्यादा राजनीतिक हस्तक्षेप होता है। सुझाव के तौर पर कहा जाता है कि ज़्यादा से ज़्यादा स्वायत्त एजेंसियाँ बननी चाहिए जिन्हें मंत्रियों को जवाब न देना पड़े।
   (क) क्या आप मानते हैं कि इससे प्रशासन ज़्यादा जन-हितैषी होगा?
   (ख) क्या आप मानते हैं कि इससे प्रशासन की कार्य कुशलता बढ़ेगी?
   (ग) क्या लोकतंत्र का अर्थ यह होता है कि निर्वाचित प्रतिनिधियों का प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण हो?

10. नियुक्ति आधारित प्रशासन की जगह निर्वाचन आधारित प्रशासन होना चाहिए - इस विषय पर 200 शब्दों में एक लेख लिखो।

© NCERT not to be republished

अध्याय पाँच

विधायिका

11103CH05

© NCERT not to be republished

परिचय

हम भारत में चुनावों का महत्त्व और चुनावों के लिए अपनाई गई प्रक्रिया का अध्ययन पिछले अध्यायों में कर चुके हैं। विधायिकाएँ जनता द्वारा निर्वाचित होती हैं और जनता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती हैं। इस अध्याय में आप पढ़ेंगे कि निर्वाचित विधायिकाएँ कैसे काम करती हैं और लोकतांत्रिक सरकार को बनाए रखने में कैसे मदद करती हैं। आप भारत में संसद और राज्यों की विधायिकाओं की संरचना और कार्यों तथा लोकतांत्रिक शासन में उनके महत्त्व का अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी होगी:

- *विधायिका का क्या महत्त्व है?*
- *संसद के कार्य और शक्तियाँ क्या हैं?*
- *कानून कैसे बनता है?*
- *संसद कार्यपालिका को कैसे नियंत्रित करती है?*
- *संसद अपने ऊपर कैसे नियंत्रण रखती है?*

हमें संसद क्यों चाहिए?

विधायिका केवल कानून बनाने वाली संस्था नहीं है। इसके अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों में से कानून बनाना भी एक कार्य है। यह सभी लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रियाओं का केंद्र है। संसद में बहुत-से दृश्य देखने को मिलते हैं। सदन में बहस, बहिर्गमन, विरोध, प्रदर्शन, सर्वसम्मति, सरोकार और सहयोग आदि इसे अत्यंत जीवंत रखते हैं। ये सभी बहुत ही महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों को पूरा करते हैं। दरअसल वास्तविक प्रतिनिधित्व वाली कुशल और प्रभावी विधायिका के बिना सच्चे लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। विधायिका जन-प्रतिनिधियों का जनता के प्रति उत्तरदायित्व सुनिश्चित करती है। यह वास्तव में प्रतिनिधिक लोकतंत्र का आधार है।

इसके बावजूद अधिकांश लोकतंत्रों में कार्यपालिका के मुकाबले विधायिकाएँ अपना महत्त्व खोती जा रही हैं। भारत में भी मंत्रिमंडल नीति निर्माण की पहल करता है, शासन का एजेंडा तय करता है और उसे लागू करता है। इससे कुछ आलोचकों को यह कहने का मौका मिल गया कि संसद का ह्रास हो गया है। लेकिन अत्यंत शक्तिशाली मंत्रिमंडल को भी विधायिका में बहुमत की आवश्यकता होती है। एक सशक्त नेता को भी संसद का सामना करना पड़ता है और संसद को अपने जवाबों से संतुष्ट करना पड़ता है। यह हमें संसद की लोकतांत्रिक क्षमता का एहसास कराता है। यह वाद-विवाद का सबसे लोकतांत्रिक और खुला मंच है। अपनी संरचनात्मक विशेषता के कारण यह सरकार के अन्य सभी अंगों में सबसे ज़्यादा प्रतिनिधिक है। और फिर, इसके पास सरकार (कार्यपालिका) का चयन करने और उसे बर्खास्त करने की शक्ति भी है।

खुद करें—खुद सीखें

इन समाचारों पर विचार करें और यह सोचें कि यदि विधायिकाएँ न होतीं, तो क्या होता? प्रत्येक रिपोर्ट को पढ़ने के बाद बताएँ कि कैसे कार्यपालिका को नियंत्रित करने में विधायिका सफल या असफल रही –

- **28 फरवरी 2002:** केंद्रीय वित्त मंत्री जसवंत सिंह ने केंद्रीय बजट प्रस्तावों में 50 किलोग्राम यूरिया खाद की बोरी की कीमत 12 रुपए बढ़ाने तथा दो अन्य खादों के दामों में भी कुछ वृद्धि करने के प्रस्ताव की घोषणा की। इससे खाद के दामों में 5 प्रतिशत वृद्धि हुई। यूरिया खाद के वर्तमान मूल्य 4830 रु. प्रति टन पर 80 प्रतिशत सब्सिडी है।
- **11 मार्च 2002:** विपक्ष के जबर्दस्त विरोध के कारण वित्तमंत्री को खाद के दामों में वृद्धि के प्रस्ताव को वापस लेना पड़ा।

(*द हिन्दू*, 12 मार्च 2002)

© NCERT not to be republished

- **4 जून 1998:** को लोक सभा में यूरिया खाद और पेट्रोलियम पदार्थों के दामों में वृद्धि को लेकर विवादास्पद स्थिति बन गई। पूरे विपक्ष ने सदन से बहिर्गमन किया। इस मुद्दे पर सदन में दो दिनों तक गर्मा-गर्मी रही। वित्त मंत्री ने अपने बजट प्रस्तावों में यूरिया खाद के दामों में मात्र 50 पैसे प्रति किलोग्राम की वृद्धि का प्रस्ताव किया था जिससे उस पर सब्सिडी कम की जा सके। इस विरोध के परिणामस्वरूप, वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा को मूल्य वृद्धि के प्रस्तावों को वापस लेना पड़ा।

  (*हिन्दुस्तान टाइम्स*, 4-5 जून 1998)

- **22 फरवरी 1983:** एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए आज लोक सभा ने सर्वसम्मति से सरकारी काम-काज को स्थगित करने तथा असम पर बहस को प्राथमिकता देने का निर्णय लिया। गृहमंत्री पी सी सेठी ने बयान दिया "असम में रहने वाले सभी समुदायों और समूहों के बीच सद्भाव कायम करने के लिए मैं अलग-अलग विचार और नीतियों से प्रतिबद्धता रखने वाले आप सभी सदस्यों का सहयोग चाहता हूँ। यह समय विवाद का नहीं वरन घाव पर मरहम लगाने का है।"

  (*हिन्दुस्तान टाइम्स*, 22 फरवरी 1983)

- लोक सभा में काँग्रेस सदस्यों ने आंध्र प्रदेश में हरिजनों के उत्पीड़न के प्रति विरोध जताया।

  (द *हिन्दू*, 3 मार्च 1985)

संसद में दो सदनों की क्या आवश्यकता है?

हमारी राष्ट्रीय विधायिका का नाम संसद है। राज्यों की विधायिकाओं को विधान मंडल कहते हैं। भारतीय संसद में दो सदन हैं। जब किसी विधायिका में दो सदन होते हैं, तो उसे द्वि-सदनात्मक विधायिका कहते हैं। भारतीय संसद के एक सदन को राज्य सभा तथा दूसरे को लोक सभा कहते हैं। संविधान ने राज्यों को एक-सदनात्मक या द्वि-सदनात्मक विधायिका स्थापित करने का विकल्प दिया है। अब केवल सात राज्यों में ही द्वि-सदनात्मक विधायिका है।

विविधताओं से परिपूर्ण बड़े देश प्रायः द्वि-सदनात्मक राष्ट्रीय विधायिका चाहते हैं, ताकि वे अपने समाज के सभी वर्गों और देश के सभी क्षेत्रों या भागों को समुचित प्रतिनिधित्व दे सकें। द्वि-सदनात्मक विधायिका का एक और लाभ यह है कि संसद के प्रत्येक निर्णय पर दूसरे सदन में पुनर्विचार हो जाता है। एक सदन द्वारा लिया गया

© NCERT not to be republished

द्वि-सदनात्मक विधायिका वाले प्रांत

आंध्र प्रदेश
बिहार
जम्मू और कश्मीर
कर्नाटक
महाराष्ट्र
तेलंगाणा
उत्तर प्रदेश

© NCERT not to be republished

प्रत्येक निर्णय दूसरे सदन के निर्णय के लिए भेजा जाता है। इसका मतलब यह कि प्रत्येक विधेयक और नीति पर दो बार विचार होता है। इससे हर मुद्दे को दो बार जाँचने का मौका मिलता है। यदि एक सदन जल्दबाज़ी में कोई निर्णय ले लेता है तो दूसरे सदन में बहस के दौरान उस पर पुनर्विचार संभव हो पाता है।

> ··· उच्च सदन पुनर्विचार करने के उपयोगी काम को अंजाम दे सकता है। और ··· इसके विचारों का तो महत्त्व हो सकता है पर मतों का नहीं ··· जो लोग सक्रिय राजनीति की उठा-पटक से दूर हैं वे ··· निचले सदन को सलाह दे सकते हैं।
>
> पूर्णिमा बनर्जी
> संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड IX, पृष्ठ 33, 30 जुलाई 1949

राज्य सभा

संसद के प्रत्येक सदन में प्रतिनिधित्व का आधार अलग-अलग है। राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। इसका निर्वाचन अप्रत्यक्ष विधि से होता है। किसी राज्य के लोग राज्य की विधान सभा के सदस्यों को चुनते हैं। फिर, राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्य, राज्य सभा के सदस्यों को चुनते हैं।

द्वितीय सदन (राज्य सभा) में प्रतिनिधित्व के लिए दो सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है। एक तरीका यह हो सकता है कि देश के सभी क्षेत्रों को असमान आकार और जनसंख्या के बावजूद द्वितीय सदन में समान प्रतिनिधित्व दिया जाय। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में असमान प्रतिनिधित्व दिया जाय। अर्थात्, द्वितीय सदन में ज़्यादा जनसंख्या वाले क्षेत्रों को ज़्यादा और कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों को कम प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

अमेरिका के द्वितीय सदन (सीनेट) में प्रत्येक राज्य को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। यह सभी राज्यों में समानता स्थापित करता है। लेकिन इसका अर्थ यह भी है कि छोटे राज्यों को बड़े राज्यों के बराबर ही प्रतिनिधित्व मिलेगा। हमारी राज्य सभा के

© NCERT not to be republished

लिए इस अमेरिकी प्रतिनिधित्व प्रणाली से अलग तरीका अपनाया गया है। संविधान की चौथी अनुसूची में प्रत्येक राज्य से निर्वाचित होने वाले सदस्यों की संख्या निर्धारित कर दी गई है।

यदि हम राज्य सभा में प्रतिनिधित्व के लिए 'अमेरिका की समान-प्रतिनिधित्व प्रणाली' का प्रयोग करें तो क्या होगा? 1998.12 लाख (लगभग 19.98 करोड़) जनसंख्या वाले उत्तर प्रदेश को 6.10 लाख जनसंख्या वाले सिक्किम के बराबर ही प्रतिनिधित्व मिलेगा। संविधान निर्माता ऐसी विसंगति से बचना चाहते थे। यहाँ ज़्यादा जनसंख्या वाले राज्यों को अधिक और कम जनसंख्या वाले राज्यों को कम प्रतिनिधित्व दिया गया है। इस प्रकार, ज़्यादा जनसंख्या वाले उत्तर प्रदेश को 31 तथा छोटे और कम जनसंख्या वाले सिक्किम को राज्य सभा में एक सीट दी गयी है।

राज्य सभा के सदस्यों को 6 वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है। उन्हें दुबारा निर्वाचित किया जा सकता है। राज्य सभा के सभी सदस्य अपना कार्यकाल एक साथ पूरा नहीं करते। प्रत्येक दो वर्ष पर राज्य सभा के एक तिहाई सदस्य अपना कार्यकाल पूरा करते हैं और इन एक तिहाई सीटों के लिए चुनाव होते हैं। इस तरह राज्य सभा कभी भी पूरी तरह भंग नहीं होती। अतः इसे संसद के स्थायी सदन के रूप में जानते

जर्मनी में द्वि-सदनात्मकता

जर्मनी में विधायिका द्वि-सदनात्मक है। दोनों सदनों को बुंदेस्टैग (फेडरल एसेंबली) और बुंदेसरैट (फेडरल कौंसिल) कहते हैं। एसेंबली का चुनाव प्रत्यक्ष और समानुपातिक प्रतिनिधित्व की एक मिली-जुली जटिल प्रक्रिया से चार वर्ष के लिए होता है।

जर्मनी के 16 संघीय राज्यों को फेडरल कौंसिल में प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। बुंदेसरैट की 69 सीटें राज्यों में जनसंख्या के अनुपात में बाँट दी जाती हैं। ये सभी सदस्य सामान्य रूप से राज्य सरकार में मंत्री होते हैं और उनका चुनाव नहीं होता वरन् वे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। जर्मनी के कानून के अनुसार इन सभी सदस्यों को एक टीम की भाँति अपने राज्य सरकार के निर्देशों के अनुसार वोट देना होता है। कभी-कभी, राज्यों में गठबंधन सरकार होने पर इन सदस्यों में सहमति नहीं बन पाती तब वे मतदान में भाग नहीं ले पाते।

बुंदेसरैट सभी कानूनी प्रस्तावों पर मतदान नहीं करती, लेकिन वे सभी नीतिगत मुद्दे जिन पर संघीय राज्यों को समवर्ती-शक्तियाँ प्राप्त हैं और जिन विषयों में संघीय निर्देशों को लागू कराने की ज़िम्मेदारी राज्य सरकारों पर हो, वे सभी मुद्दे बूंदेसरैट द्वारा पारित होने चाहिए। बूंदेसरैट ऐसे विधेयकों को 'वीटो' भी कर सकती है।

© NCERT not to be republished

हैं। इस व्यवस्था का लाभ यह है कि जब लोक सभा भंग होती है और चुनाव होने बाकी होते हैं, तब राज्य सभा की बैठक बुलाई जा सकती है और ज़रूरी मामलों को निपटाया जा सकता है।

निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त राज्य सभा में 12 मनोनीत सदस्य होते हैं। जिन्होंने साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष उपलब्धि हासिल की हो उन्हें राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है।

मुझे समझ में नहीं आता कि खिलाड़ी, कलाकार और वैज्ञानिकों को मनो-नीत करने का प्रावधान क्यों है? वे किसका प्रतिनिधित्व करते हैं? और क्या वे वास्तव में राज्य सभा की कार्यवाही में कुछ खास योगदान दे पाते हैं?

खुद करें— खुद सीखें

विभिन्न राज्यों के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या का पता लगाएँ। एक चार्ट बनाकर 2011 की जनगणना के अनुसार प्रत्येक राज्य की जनसंख्या तथा उस राज्य से निर्वाचित राज्य सभा के सदस्यों की संख्या दिखाएँ।

लोक सभा

लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिए जनता सीधे सदस्यों को चुनती है। इसे प्रत्यक्ष निर्वाचन कहते हैं। लोक सभा चुनावों के लिए पूरे देश को और विधान सभा चुनावों के लिए किसी राज्य को लगभग समान जनसंख्या वाले निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है; चुनाव 'सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार' के आधार पर होता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के मत का मूल्य दूसरे व्यक्ति के मत के मूल्य के बराबर होता है। इस समय लोक सभा के 543 निर्वाचन क्षेत्र हैं। यह संख्या 1971 की जनगणना से चली आ रही है।

लोक सभा के लिए सदस्यों को 5 वर्ष के लिए चुना जाता है। लेकिन यदि कोई दल या दलों का गठबंधन सरकार न बना सके अथवा प्रधान मंत्री राष्ट्रपति को लोक सभा भंग कर नए चुनाव कराने की सलाह दे, तो लोक सभा को 5 वर्ष के पहले भी भंग किया जा सकता है।

© NCERT not to be republished

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- क्या आप मानते हैं कि राज्य सभा की संरचना ने भारत में राज्यों की स्थिति को संरक्षित किया है?
- क्या राज्य सभा के चुनाव अप्रत्यक्ष न होकर प्रत्यक्ष होने चाहिए? इससे क्या फायदा या नुकसान होगा?
- 1971 की जनगणना से लोक सभा में सीटों की संख्या नहीं बढ़ी है। क्या आप मानते हैं कि इसे बढ़ाना चाहिए? इसके लिए क्या आधार होना चाहिए?

संसद क्या करती है?

विधायिकाओं के क्या कार्य हैं? क्या संसद के दोनों सदनों के कार्य समान हैं? क्या दोनों सदनों की शक्तियों में कोई फर्क है?

कानून बनाने के अतिरिक्त, संसद के अन्य अनेक कार्य हैं। आइए इन कार्यों की सूची बनाएँ–

- **विधायी कामकाज**–संसद पूरे देश या देश के किसी भाग के लिए कानून बनाती है। कानून बनाने वाली सर्वोच्च संस्था होने के बावजूद संसद प्रायः कानूनों को केवल स्वीकृति देने मात्र का काम करती है।
  विधेयकों को तैयार करने का वास्तविक काम तो किसी मंत्री के निर्देशन में नौकरशाही करती है। विधेयक का उद्देश्य और संसद में उसे प्रस्तुत करने का समय मंत्रिमंडल तय करता है। कोई भी महत्त्वपूर्ण विधेयक बिना मंत्रिमंडल की स्वीकृति के संसद में पेश नहीं किया जाता। संसद के अन्य निजी सदस्य भी कोई विधेयक प्रस्तुत कर सकते हैं, पर बिना सरकार के समर्थन के ऐसे विधेयकों का पास होना संभव नहीं।
- **कार्यपालिका पर नियंत्रण तथा उसका उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना**–संसद का सबसे महत्त्वपूर्ण काम कार्यपालिका को उसके अधिकार क्षेत्र में सीमित रखने तथा जनता (जिसने उसे चुना है) के प्रति उसका उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना है। इस अध्याय में आगे हम इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे।
- **वित्तीय कार्य**–सरकार को बहुत-से काम करने पड़ते हैं। इन कामों पर धन

© NCERT not to be republished

खर्च होता है। यह धन कहाँ से आता है? प्रत्येक सरकार कर-वसूली के द्वारा अपने संसाधनों को बढ़ाती है। लेकिन, लोकतंत्र में संसद कराधान तथा सरकार द्वारा धन के प्रयोग पर नियंत्रण रखती है। यदि भारत सरकार कोई नया कर प्रस्ताव लाए तो उसे संसद की स्वीकृति लेनी पड़ती है। संसद की वित्तीय शक्तियाँ उसे सरकार के कार्यों के लिए धन उपलब्ध कराने का अधिकार देती हैं। सरकार को अपने द्वारा खर्च किए गए धन का हिसाब तथा प्रस्तावित आय का विवरण संसद को देना पड़ता है। संसद यह भी सुनिश्चित करती है कि सरकार न तो गलत खर्च करे और न ही ज़्यादा खर्च करे। संसद यह सब बजट और वार्षिक वित्तीय वक्तव्य के माध्यम से करती है।

कार्टून बूझें

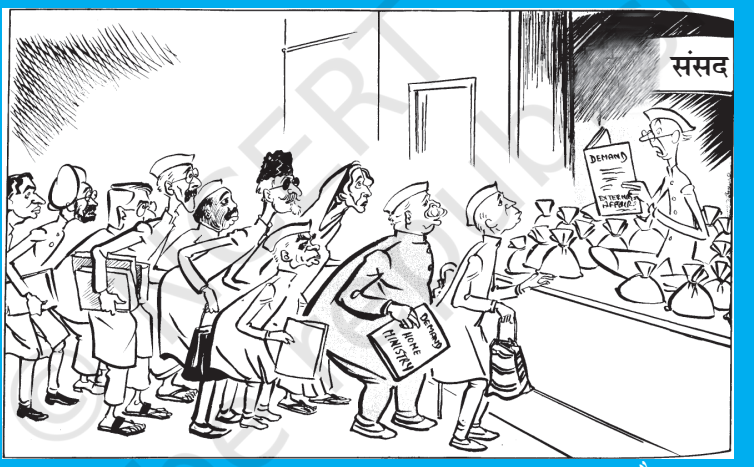

शंकर, © चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट

3 अप्रैल 1955

संसद एक हाकिम है और यहाँ मंत्रिगण बड़े दीन-हीन लग रहे हैं। विभिन्न मंत्रालयों को धन आबंटित करने की संसद की शक्ति का यह परिणाम है।

- **प्रतिनिधित्व**–संसद देश के विभिन्न क्षेत्रीय, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समूहों के अलग-अलग विचारों का प्रतिनिधित्व करती है।
- **बहस का मंच**–संसद देश में वाद-विवाद का सर्वोच्च मंच है। विचार-विमर्श करने की उसकी शक्ति पर कोई अंकुश नहीं है। सदस्यों को किसी भी विषय पर निर्भीकता से बोलने की स्वतंत्रता है। इससे संसद राष्ट्र के समक्ष आने वाले किसी एक या हर मुद्दे का विश्लेषण कर पाती है। यह विचार-विमर्श हमारी लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया की आत्मा है।

© NCERT not to be republished

- **संवैधानिक कार्य**–संसद के पास संविधान में संशोधन करने की शक्ति है। संसद के दोनों सदनों की संवैधानिक शक्तियाँ एक समान हैं। प्रत्येक संविधान संशोधन का संसद के दोनों सदनों के द्वारा एक विशेष बहुमत से पारित होना ज़रूरी है।
- **निर्वाचन संबंधी कार्य**–संसद चुनाव संबंधी भी कुछ कार्य करती है। यह भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव करती है।
- **न्यायिक कार्य**–भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाए जाने के प्रस्तावों पर विचार करने के कार्य संसद के न्यायिक कार्य के अंतर्गत आते हैं।

राज्य सभा की शक्तियाँ

ऊपर हमने संसद द्वारा किए जाने वाले कार्यों का अध्ययन किया। लेकिन, द्विसदनात्मक विधायिका में दोनों सदनों की शक्तियों में कुछ अंतर होता है। नीचे के दोनों चार्टों को ध्यान से देखें। एक में लोक सभा और दूसरे में राज्य सभा की शक्तियों की सूची दी गई है।

लोक सभा की शक्तियाँ–

- संघ सूची और समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाती है। धन विधेयकों और सामान्य विधेयकों को प्रस्तुत और पारित करती है।
- कर-प्रस्तावों, बजट और वार्षिक वित्तीय वक्तव्यों को स्वीकृति देती है।
- प्रश्न पूछ कर, पूरक प्रश्न पूछ कर, प्रस्ताव लाकर और अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से कार्यपालिका को नियंत्रित करती है।
- संविधान में संशोधन करती है।
- आपात्काल की घोषणा को स्वीकृति देती है।
- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव करती है तथा उन्हें और सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटा सकती है।
- समिति और आयोगों का गठन करती है और उनके प्रतिवेदनों पर विचार करती है।

राज्य सभा की शक्तियाँ–

- सामान्य विधेयकों पर विचार कर उन्हें पारित करती है और धन विधेयकों में संशोधन प्रस्तावित करती है।
- संवैधानिक संशोधनों को पारित करती है।
- प्रश्न पूछ कर तथा संकल्प और प्रस्ताव प्रस्तुत करके कार्यपालिका पर नियंत्रण करती है।
- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव में भागीदारी करती है तथा उन्हें और सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटा सकती है। उपराष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव केवल राज्य सभा में ही लाया जा सकता है।
- यह संसद को राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दे सकती है।

© NCERT not to be republished

राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ

आप जानते हैं कि राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है। इसका उद्देश्य राज्य के हितों (शक्तियों) का संरक्षण करना है। इसलिए, राज्य के हितों को प्रभावित करने वाला प्रत्येक मुद्दा इसकी सहमति और स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि केंद्र सरकार राज्य सूची के किसी विषय (जिस पर केवल राज्य की विधान सभा कानून बना सकती है) को, राष्ट्र हित में, संघीय सूची या समवर्ती सूची में हस्तांतरित करना चाहे, तो उसमें राज्य सभा की स्वीकृति आवश्यक है। इस प्रावधान से राज्य सभा की शक्ति बढ़ती है। लेकिन अनुभव के आधार पर तो यही लगता है कि राज्य सभा के सदस्य अपने राज्यों से अधिक अपने-अपने दलों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

लोक सभा की विशेष शक्तियाँ–कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं जिनका प्रयोग केवल लोक सभा ही कर सकती है। केवल लोक सभा में ही धन विधेयक प्रस्तुत किए जा सकते हैं और वही उसे संशोधित या अस्वीकृत कर सकती है। मंत्रिपरिषद् केवल लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है, राज्य सभा के प्रति नहीं। अतः राज्य सभा सरकार की आलोचना तो कर सकती है पर उसे हटा नहीं सकती।

तो लोकसभा का खजाने पर नियंत्रण है! इसलिए वह ज़्यादा शक्तिशाली है।

क्या आप बता सकते हैं कि ऐसा क्यों? राज्य सभा को जनता नहीं बल्कि विधायक चुनते हैं। अतः संविधान ने राज्य सभा को लोक सभा के बराबर शक्तियाँ नहीं दीं। संविधान द्वारा अपनायी गई लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता के पास अंतिम शक्ति होती है। इस तर्क के अनुसार जनता के द्वारा प्रत्यक्ष विधि से निर्वाचित प्रतिनिधियों के पास ही सरकार को हटाने और वित्त पर नियंत्रण रखने की शक्ति होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, सामान्य और संवैधानिक विधेयकों को पारित करने, राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने तथा उपराष्ट्रपति हो हटाने आदि के संबंध में लोक सभा और राज्य सभा की शक्तियाँ समान हैं।

संसद कानून कैसे बनाती है?

संसद का प्रमुख कार्य अपनी जनता के लिए कानून बनाना है। कानून बनाने के लिए एक निश्चित प्रक्रिया अपनाई जाती है। कानून बनाने की विधियों में से कुछ का उल्लेख संविधान में किया गया है, लेकिन कानून बनाने की कुछ विधियाँ कालक्रम में लगातार पालन किए जाने के कारण स्वीकार कर

© NCERT not to be republished

ली गई हैं। कानून बनने की प्रक्रिया में किसी विधेयक को कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। इन अवस्थाओं पर गौर करें। आपको साफ-साफ पता लगेगा कि कानून बनाने की प्रक्रिया तकनीकी और कठिन है।

प्रस्तावित कानून के प्रारूप को विधेयक कहते हैं। विधेयक कई तरह के हो सकते

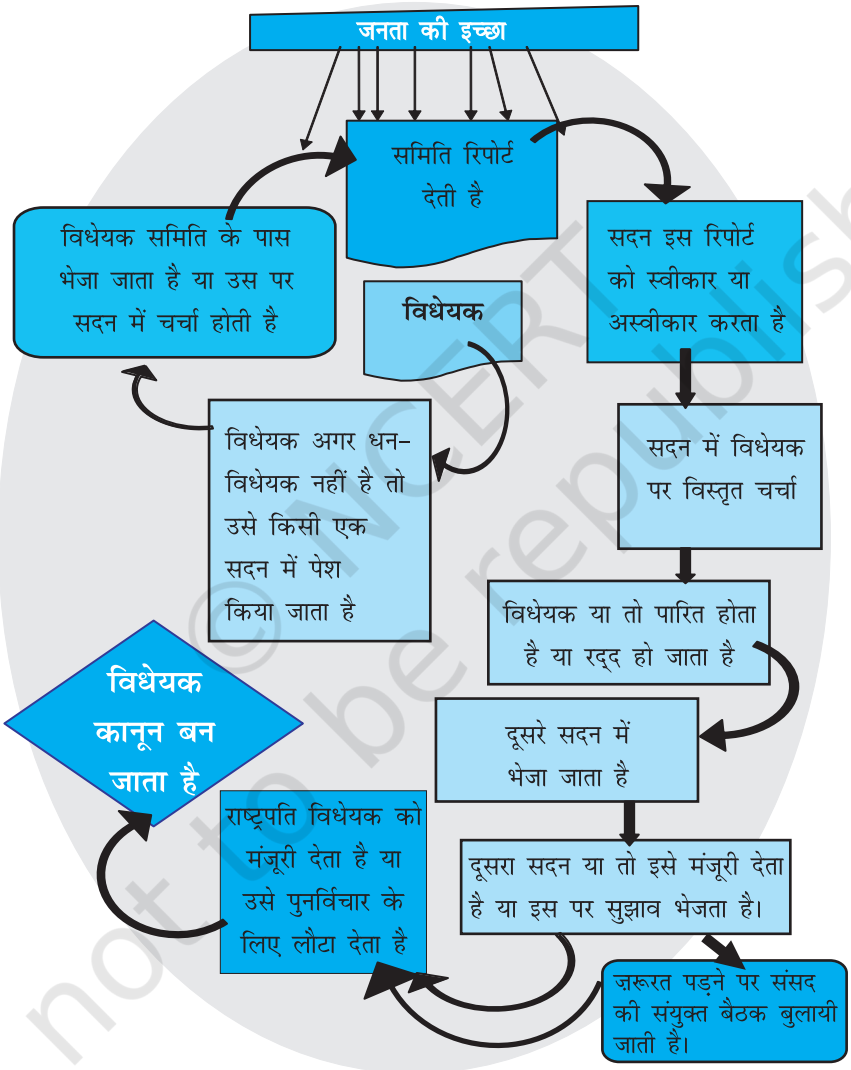

© NCERT not to be republished

हैं। मंत्री के अतिरिक्त कोई और सदस्य विधेयक पेश करे तो ऐसे विधेयक को 'निजी सदस्यों का विधेयक' कहते हैं। मंत्री के द्वारा प्रस्तुत विधेयक को सरकारी विधेयक कहते हैं। विधेयक जिन चरणों से होकर पारित होता है, आइए उसे देखें।

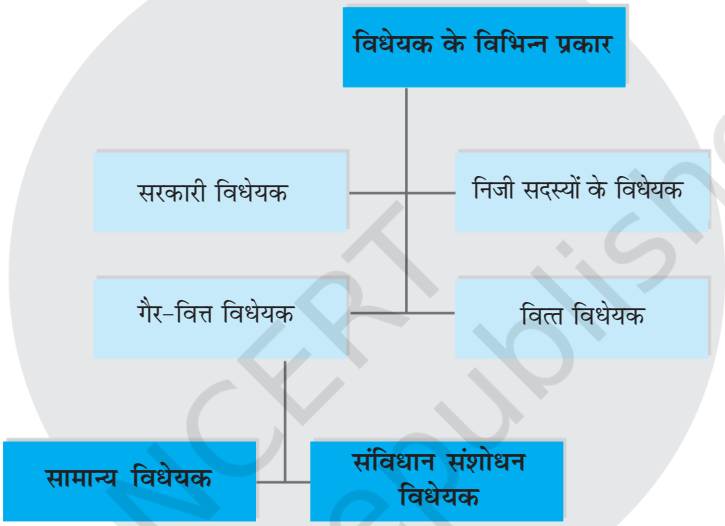

संसद में विधेयक प्रस्तुत किए जाने से पहले ही इस बात पर काफी बहस होती है कि उस विधेयक की क्या ज़रूरत है। कोई राजनीतिक दल अपने चुनावी वायदों को पूरा करने या आगामी चुनावों को जीतने के इरादे से किसी विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए सरकार पर दबाव डाल सकता है। अनेक हित-समूह, मीडिया और नागरिक संगठन भी किसी विधेयक को लाने के लिए सरकार पर दबाव डाल सकते हैं। अत: कानून बनाना केवल एक विधायी प्रक्रिया ही नहीं बल्कि राजनीतिक प्रक्रिया भी है। विधेयक बनाने में अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है, जैसे- कानून को लागू करने के लिए ज़रूरी संसाधनों को कहाँ से जुटाया जाएगा, विधेयक का कितना समर्थन और विरोध होगा, प्रस्तावित कानून से सत्तारूढ़ दल की चुनावी संभावनाओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा आदि। खास तौर पर आज के गठबंधन सरकारों के युग में, सरकार द्वारा प्रस्तावित विधेयक को गठबंधन के सभी घटक दलों का भी समर्थन प्राप्त होना चाहिए। इन व्यावहारिक बातों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कानून बनाने का निर्णय लेने से पहले मंत्रिमंडल इन सभी बातों पर विचार करता है।

© NCERT not to be republished

एक बार जब मंत्रिमंडल उस नीति को स्वीकृति दे देता है जिस पर कानून आधारित होता है, तब विधेयक का प्रारूप बनाने का कार्य शुरू होता है। विधेयक जिस मंत्रालय से संबद्ध होता है, वही मंत्रालय उसका प्रारूप बनाता है। उदाहरण के लिए, लड़कियों के विवाह की उम्र यदि 18 वर्ष से बढ़ा कर 21 वर्ष करनी है, तो इसका प्रारूप विधि मंत्रालय बनाएगा। इसमें महिला और बाल कल्याण मंत्रालय की भी भागीदारी हो सकती है।

संसद के किसी भी सदन – लोक सभा या राज्य सभा में कोई भी सदस्य इस विधेयक को पेश कर सकता है (जिस विषय का विधेयक हो उस विषय से जुड़ा मंत्री ही अकसर विधेयक पेश करता है)। किसी धन विधेयक को केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। लोक सभा में पारित होने के बाद उसे राज्य सभा में भेज दिया जाता है।

विधेयकों पर विचार-विमर्श अधिकतर संसदीय समितियों में होता है। समिति की सिफारिशों को सदन को भेज दिया जाता है। इन समितियों में सभी संसदीय दलों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। इसी कारण इन समितियों को 'लघु विधायिका' भी कहते हैं। यह कानून निर्माण की प्रक्रिया का दूसरा चरण है। तीसरे और अंतिम चरण में विधेयक पर मतदान होता है। जब कोई सामान्य विधेयक एक सदन द्वारा पारित कर दिया जाता है तब उसे दूसरे सदन में भेज दिया जाता है; दूसरे सदन में भी वह इसी प्रक्रिया से गुजरता है।

जैसा आप जानते हैं कि किसी विधेयक को लागू होने के लिए इसका दोनों सदनों में पास होना ज़रूरी है। लेकिन, यदि प्रस्तावित विधेयक पर दोनों सदनों के बीच मतभेद हों तो उसे संसद के संयुक्त अधिवेशन के माध्यम से सुलझाने की कोशिश की जाती है। पहले जब कभी भी ऐसे मतभेदों को सुलझाने के लिए संसद का संयुक्त अधिवेशन बुलाया गया, निर्णय हमेशा ही लोक सभा के पक्ष में गया है।

लेकिन धन विधेयक के मामले में, राज्य सभा उसे या तो स्वीकार कर सकती है या संशोधन प्रस्तावित कर सकती है, लेकिन वह धन विधेयक को अस्वीकार नहीं कर सकती है। यदि राज्य सभा 14 दिनों तक उस पर कोई निर्णय न ले तो उसे राज्य सभा के द्वारा पारित मान लिया जाता है। विधेयक के बारे में राज्य सभा द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को लोक सभा मान भी सकती है और नहीं भी।

कार्टून बूझें

ठीक है! बहस नहीं करते हैं। बात को आपसी सहमति से सुलझाते हैं।

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

तुम विधेयक का समर्थन करना और मैं उसका विरोध करूँगा।

© NCERT not to be republished

अनुच्छेद 109–

धन विधेयकों के संबंध में विशेष प्रक्रिया-1

धन विधेयक राज्य सभा में पेश नहीं किया जाएगा।

जब कोई विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तब उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद वह विधेयक कानून बन जाता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

कानून बनाने की विधि के अध्ययन के बाद, क्या आपको लगता है कि संसद विधेयकों पर विस्तृत चर्चा के लिए पर्याप्त समय दे सकती है? यदि नहीं; तो इस समस्या के समाधान के लिए आप क्या सुझाव देंगे।

संसद कार्यपालिका को कैसे नियंत्रित करती है?

जिस दिल या दलों के गठबंधन को लोकसभा में बहुमत हासिल होता है उसी के सदस्यों को मिलाकर संसदीय लोकतंत्र में कार्यपालिका बनती है। संभव है कि बहुमत की ताकत पाकर यह कार्यपालिका अपनी शक्तियों का मनमाना प्रयोग करने लगे। ऐसी स्थिति में संसदीय लोकतंत्र मंत्रिमंडल को तानाशाही में बदल सकता है जिसमें मंत्रिमंडल जो कहेगा सदन को वही मानना पड़ेगा। जब संसद सक्रिय और सचेत होगी, तभी वह कार्यपालिका पर नियमित और प्रभावी नियंत्रण रख सकेगा। संसद अनेक विधियों का प्रयोग कर कार्यपालिका को नियंत्रित करती है। लेकिन इसके लिए ज़रूरी है कि सांसदों और विधायकों को जनप्रतिनिधियों के रूप में प्रभावी और निर्भीक रूप से काम करने की शक्ति और स्वतंत्रता हो। उदाहरण के

© NCERT not to be republished

लिए, विधायिका में कुछ भी कहने के बावजूद किसी सदस्य के विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। इसे संसदीय विशेषाधिकार कहते हैं। विधायिका के अध्यक्ष को संसदीय विशेषाधिकार के हनन के मामले में अंतिम निर्णय लेने की शक्ति होती है।

ऐसे विशेषाधिकारों का उद्देश्य यह है कि सांसद और विधायक अपनी जनता का ठीक से प्रतिनिधित्व कर सकें और कार्यपालिका पर प्रभावी नियंत्रण रख सकें। संसद यह नियंत्रण कैसे करती है? वह किन साधनों का प्रयोग करती है? क्या कार्यपालिका की ज़्यादतियों पर संसदीय नियंत्रण सफल है?

संसदीय नियंत्रण के साधन

संसदीय लोकतंत्र में विधायिका अनेक स्तरों पर कार्यपालिका की जवाबदेही को सुनिश्चित करने का काम करती है। यह काम नीति-निर्माण, कानून या नीति को लागू करने तथा कानून या नीति के लागू होने की बाद वाली अवस्था यानि किसी भी स्तर पर किया जा सकता है। विधायिका यह काम कई तरीकों से करती है –

- बहस और चर्चा
- कानूनों की स्वीकृति या अस्वीकृति
- वित्तीय नियंत्रण
- अविश्वास प्रस्ताव

बहस और वाद-विवाद–कानून निर्माण करने की प्रक्रिया में विधायिका के सदस्यों को कार्यपालिका द्वारा बनाई गई नीतियों और उसके क्रियान्वयन के तरीकों पर बहस करने का अवसर मिलता है। विधेयकों पर परिचर्चा के अतिरिक्त, सदन में सामान्य वाद-विवाद के दौरान भी विधायिका को कार्यपालिका पर नियंत्रण करने का अवसर मिल सकता है। ऐसे कुछ अवसर निम्न हैं- **प्रश्न काल**–संसद के अधिवेशन के समय प्रतिदिन 'प्रश्नकाल' आता है जिसमें मंत्रियों को सदस्यों के तीखे प्रश्नों का जवाब देना पड़ता है; **शून्यकाल**–इसमें सदस्य किसी भी महत्त्वपूर्ण मुद्दे को उठा सकते हैं पर मंत्री उसका उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है और लोकहित के मामले में **आधे घंटे की चर्चा और स्थगन-प्रस्ताव** आदि।

'प्रश्नकाल' सरकार की कार्यपालिका और प्रशासकीय एजेंसियों पर निगरानी रखने का सबसे प्रभावी तरीका है। संसद के सदस्यों ने प्रश्नकाल में गहरी

इतने सारे 'स्टिंग ऑपरेशनों' के बाद क्या मंत्री अब भी कहीं भी कुछ भी बोलने को स्वतंत्र हैं?

© NCERT not to be republished

मंत्री होना बड़ा कठिन काम है। यह तो रोज एक इम्तहान देने जैसा है।

रूचि दिखाई है और इस समय सदन में सबसे ज़्यादा उपस्थिति रहती है। ज़्यादातर प्रश्न लोक-अभिहित के विषयों जैसे मूल्य वृद्धि, अनाज की उपलब्धता, समाज के कमज़ोर वर्गों के विरुद्ध अत्याचार, दंगे, कालाबाज़ारी आदि पर सरकार से सूचनाएँ माँगने के लिए होते हैं। इसमें सदस्यों को सरकार की आलोचना करने तथा अपने निर्वाचन क्षेत्र की समस्याओं को उठाने का अवसर मिलता है। प्रश्नकाल के दौरान वाद-विवाद इतने तीखे हो जाते हैं कि अनेक सदस्यों द्वारा अपनी बात रखने के लिए प्रायः ऊँची आवाज़ में बोलना, अध्यक्ष के आसन के पास चले जाना तथा सदन से बहिर्गमन करने जैसी घटनाएँ देखी जा सकती हैं। इससे सदन का बहुत समय बर्बाद हो जाता है। लेकिन इसी के साथ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये सभी कदम सरकार से रियायत प्राप्त करने के राजनीतिक तरीके हैं और इससे कार्यपालिका का उत्तरदायित्व सुनिश्चित होता है।

कानूनों की स्वीकृति या अस्वीकृति

कानूनों को मंजूरी देने या नामंजूर करने का अधिकार भी संसद के पास होता है। इसके अधिकार के द्वारा भी संसद कार्यपालिका का नियंत्रण करती है। कोई भी विधेयक संसद की स्वीकृति के बाद ही कानून बन पाता है। जिस सरकार को विधायिका में मन-माफिक बहुमत होता है, उसके लिए संसदीय स्वीकृति प्राप्त करना कठिन नहीं। लेकिन यह मान कर नहीं चला जा सकता है कि यह स्वीकृति मिल ही जाएगी। इस सहमति के लिए शासक दल या गठबंधन के विभिन्न सदस्यों अथवा सरकार और विपक्ष के बीच गंभीर मोल-तोल और समझौते होते हैं। यदि सरकार के पास लोक सभा में तो बहुमत हो पर राज्य सभा में न हो (जैसा कि 1977 में जनता पार्टी और 2000 में राजग सरकारों के दौरान हुआ), तब संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए सरकार को काफी रियायतें देनी पड़ती हैं। अनेक विधेयकों मसलन लोकपाल विधेयक, आतंकवाद निरोधक विधेयक (2000)- को राज्य सभा ने अस्वीकृत कर दिया।

वित्तीय नियंत्रण

जैसा पहले कहा जा चुका है, सरकार के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था बजट के द्वारा की जाती है। संसदीय स्वीकृति के लिए बजट बनाना और उसे पेश करना सरकार की संवैधानिक जिम्मेदारी है। इस जिम्मेदारी के कारण विधायिका को कार्यपालिका के

© NCERT not to be republished

'खजाने' पर नियंत्रण करने का अवसर मिल जाता है। सरकार के लिए संसाधन स्वीकृत करने से विधायिका मना कर सकती है। ऐसा इसलिए नहीं हो पाता है क्योंकि कार्यपालिका को विधायिका में बहुमत प्राप्त होता है। फिर भी, धन स्वीकृत करने से पहले लोक सभा सरकार द्वारा धन माँगने के कारणों पर चर्चा कर सकती है। वह भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक और संसद की लोक-लेखा समिति की रिपोर्ट के आधार पर धन के दुरूपयोग के मामलों की जाँच कर सकती है। लेकिन संसदीय नियंत्रण का एकमात्र उद्देश्य सरकारी धन के सदुपयोग को सुनिश्चित करना नहीं होता। वित्तीय नियंत्रण द्वारा विधायिका सरकार की नीतियों पर भी नियंत्रण करती है।

अविश्वास प्रस्ताव

संसद द्वारा कार्यपालिका को उत्तरदायी बनाने का सबसे सशक्त हथियार 'अविश्वास प्रस्ताव' है। लेकिन जब तक सरकार को अपने दल अथवा सहयोगी दलों का बहुमत प्राप्त हो तब तक सरकार को हटाने की सदन की यह शक्ति वास्तविक कम, काल्पनिक ज़्यादा होती है।

लेकिन, सन् 1989 के बाद से अपने प्रति सदन के अविश्वास के कारण अनेक सरकारों को त्यागपत्र देना पड़ा। इनमें से प्रत्येक सरकार ने लोक सभा का विश्वास खोया क्योंकि वह अपने गठबंधन के सहयोगी दलों का समर्थन बनाए न रख सकी।

इस प्रकार, संसद कार्यपालिका को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर सकती है और एक उत्तरदायी सरकार का होना सुनिश्चित कर सकती है। परंतु इसके लिए ज़रूरी है कि सदन के पास पर्याप्त समय हो, सदस्य बहस में रुचि रखते हों और उसमें प्रभावशाली ढंग से भाग लें और सरकार तथा विपक्ष में आपस में समझौता करने की इच्छा हो। पिछले दो दशकों में लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के अधिवेशनों तथा इनमें होने वाली बहस पर खर्च किए जा रहे समय में उत्तरोत्तर गिरावट आई है। इसके अतिरिक्त, संसद के दोनों सदनों में गणपूर्ति (कोरम) का अभाव और विपक्ष द्वारा अधिवेशनों के बहिष्कार जैसी समस्याएँ भी रही हैं, जिससे वाद-विवाद के द्वारा कार्यपालिका को नियंत्रित करने की सदन की शक्ति प्रभावित हुई है।

खुद करें — खुद सीखें

दूरदर्शन पर संसद के 'आँखों देखे प्रसारण' को तीन दिन तक लगातार देखिए। या इस संबंध में समाचार पत्रों में प्रकाशित खबरों को तीन दिनों तक एकत्र करें। इससे एक वालपेपर/पोस्टर तैयार करें। ऐसा करने में उन मुद्दों पर ध्यान दें जिन पर बहस हुई, अध्यक्ष की क्या भूमिका रही, कैसे प्रश्न पूछे गए, राजनीतिक दलों तथा आपके निर्वाचन क्षेत्र

© NCERT not to be republished

के प्रतिनिधि की क्या भूमिका रही, वाद-विवाद में उठे मुद्दों की प्राकृति कैसी थी-क्या वे सभी राष्ट्रीय थे या क्षेत्रीय?

इरफ़ान

सरकार से विरोध दर्ज कराने का एक आम तरीका है सदन से 'वाकआउट' करना, क्या यह काम ज़रूरत से ज़्यादा हुआ है?

संसदीय समितियाँ क्या करती हैं?

विभिन्न विधायी कार्यों के लिए समितियों का गठन संसदीय कामकाज का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। ये समितियाँ केवल कानून बनाने में ही नहीं, वरन् सदन के दैनिक कार्यों में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। चूँकि संसद केवल अपने अधिवेशन के दौरान ही बैठती है इसलिए उसके पास अत्यंत सीमित समय होता है। किसी कानून को बनाने के लिए उससे जुड़े विषय का गहन अध्ययन करना पड़ता है। इसके लिए उस पर ज़्यादा ध्यान और समय देने की ज़रूरत पड़ती है। इसके अतिरिक्त और भी महत्त्वपूर्ण कार्य होते हैं जैसे विभिन्न मंत्रालयों की अनुदान माँगों का अध्ययन, विभिन्न विभागों के द्वारा किए गए खर्चों की जाँच, भ्रष्टाचार के मामलों की पड़ताल आदि। संसदीय समितियाँ यह सब कार्य करती हैं। 1983 से भारत में संसद की स्थायी समितियों की प्रणाली विकसित की गई है। विभिन्न विभागों से संबंधित ऐसी 20 समितियाँ हैं। स्थायी समितियाँ विभिन्न विभागों के कार्यों, उनके बजट, खर्चे, तथा उनसे संबंधित विधेयकों-की देखरेख करती हैं।

स्थायी समितियों के अतिरिक्त, अपने देश में संयुक्त संसदीय समितियों का भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन समितियों में संसद के दोनों सदनों के सदस्य होते हैं। संयुक्त संसदीय समितियों का गठन किसी विधेयक पर संयुक्त चर्चा अथवा वित्तीय अनियमितताओं की जाँच के लिए किया जा सकता है।

समितियों की इस व्यवस्था ने संसद का कार्यभार हल्का कर दिया है। अनेक महत्त्वपूर्ण विधेयकों को

© NCERT not to be republished

समितियों को भेजा गया। संसद ने समितियों द्वारा किए गए काम में छिट-पुट बदलाव करके उसको मंजूरी दे दी है। कानूनी नज़रिए से देखें तो संसद की मंजूरी के बिना तो बजट पास हो सकता है और न ही कोई विधेयक कानून बन सकता है। किंतु, यह बात भी सच है कि समितियों द्वारा दिए गए सुझावों को संसद शायद ही कभी नामंजूर करती है।

जहाँ तक विधायिका की प्रकृति का सवाल है, तो उस पर कुछ प्रतिक्रिया बाधाएँ देखें तो विधायिका पर कोई बाध्यता नहीं है, संसद अथवा विधायिका की संप्रभुता पर कोई सीमा नहीं है। ...

एन. वी. गाडगिल
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 659, 18 नवंबर 1949

संसद स्वयं को कैसे नियंत्रित करती है?

हम पहले पढ़ चुके हैं कि संसद बहस-मुबाहिसे का मंच है। बहस-मुबाहिसे के ज़रिए ही संसद अपने सभी ज़रूरी काम को अंजाम देती है। यह सार्थक और अनुशासित ढंग से होना ज़रूरी है ताकि संसद की कार्यवाही आसानी से चले और उसकी गरिमा बनी रहे। खुद संविधान में संसद की कार्यवाही को सुचारु ढंग से चलने के लिए प्रावधान बनाए गए हैं। सदन का अध्यक्ष विधायिका की कार्यवाही के मामले में सर्वोच्च अधिकारी होता है।

अच्छा! तो कानून बनाने वालों पर भी कुछ कानून लागू होते हैं?

© NCERT not to be republished

इरफ़ान

कार्टून बूझें

इन सदस्यों ने 'वाकआउट' नहीं किया है। इन्हें अध्यक्ष ने बाहर निकाला है। क्या ऐसी स्थिति अकसर आती है?

मुझे समझ में नहीं आता कि नेता अपना दल क्यों बदलते हैं? क्या वे कभी अपनी उस पार्टी में लौट कर आते भी हैं जो उन्होंने छोड़ी थी?

एक और तरीके से भी सदन का अध्यक्ष अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करता है। आपने शायद दलबदल निरोधक कानून के बारे में सुना होगा। विधायिका के अधिकतर सदस्य किसी न किसी दल के टिकट पर चुने जाते हैं। यदि चुने जाने के बाद वे अपनी पार्टी छोड़ना चाहें तो क्या होगा? स्वतंत्रता के काफी समय बाद तक यह समस्या बनी रही। अंततः दलों में इस बात पर आम सहमति बनी कि किसी दल के टिकट पर निर्वाचित विधायक या सांसद को दलबदल करने से रोका जाना चाहिए। इसके लिए 1985 में संविधान का 52वाँ संशोधन किया गया। इसे 'दलबदल निरोधक कानून' कहते हैं। इसे बाद में 91वें संविधान संशोधन द्वारा दुबारा संशोधित किया गया। सदन का अध्यक्ष दलबदल से संबंधित विवादों पर अंतिम निर्णय लेता है। यदि यह सिद्ध हो जाय कि किसी सदस्य ने 'दलबदल' किया है, तो उसकी सदन की सदस्यता समाप्त हो

© NCERT not to be republished

जाती है। इसके अतिरिक्त, ऐसे दलबदलू को किसी भी राजनीतिक पद (जैसे मंत्री) के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाता है।

दलबदल क्या है? यदि कोई सदस्य अपने दल के नेतृत्व के आदेश के बावजूद सदन में उपस्थित न हो या दल के निर्देश के विपरीत सदन में मतदान करे अथवा स्वेच्छा से दल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दे तो उसे 'दलबदल' कहते हैं।

विगत 20 वर्षों का अनुभव बताता है कि 'दलबदल निरोधक कानून' दलबदल को रोकने में सफल नहीं हुआ। लेकिन इसने किसी दल के प्रधान नेता और अध्यक्षों को विधायिका के सदस्यों के विरुद्ध अतिरिक्त शक्तियाँ प्रदान की हैं।

निष्कर्ष

क्या आपने संसद की कार्यवाही का टेलीविजन पर 'आँखों देखा' प्रसारण देखा है? आपको सदन में इन्द्रधनुष की तरह रंग-बिरंगी वेश-भूषाएँ दिखाई देगीं जो देश के विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। सदन की कार्यवाही के दौरान सदस्य भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं। वे विभिन्न जाति, धर्म और संप्रदायों से आते हैं। वे प्रायः एक-दूसरे का प्रबल विरोध करते हैं। अनेक अवसरों पर ऐसा लगता है कि वे देश का समय और धन बर्बाद कर रहे हैं। लेकिन पीछे इस अध्याय में आपने देखा कि यही सांसद कार्यपालिका को प्रभावी ढंग से नियंत्रित भी कर सकते हैं। वे हमारे समाज के विभिन्न वर्गों के हितों की भी अभिव्यक्ति कर सकते हैं। अपनी खास बनावट के कारण संसद सरकार के सभी अंगों में सबसे ज़्यादा प्रतिनिध्यात्मक है। संसद में विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि वाले सदस्यों की मौजूदगी होती है। इससे संसद ज़्यादा प्रतिनिध्यात्मक हो जाती है। इस कारण संसद जनता की इच्छाओं के अनुरूप चलती और जनता की आकांक्षाओं के प्रति संवेदनशील होकर काम करती है।

संसदीय लोकतंत्र में जनता की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली यह विधायिका अत्यंत शक्तिशाली और उत्तरदायी संस्था है। यही संसद की लोकतांत्रिक शक्ति का आधार है।

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. आलोक मानता है कि किसी देश को कारगर सरकार की ज़रूरत होती है जो जनता की भलाई करे। अत: यदि हम सीधे-सीधे अपना प्रधानमंत्री और मंत्रिगण चुन लें और शासन का काम उन पर छोड़ दें, तो हमें विधायिका की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। क्या आप इससे सहमत हैं? अपने उत्तर का कारण बताएँ।

2. किसी कक्षा में द्वि-सदनीय प्रणाली के गुणों पर बहस चल रही थी। चर्चा में निम्नलिखित बातें उभरकर सामने आयीं। इन तर्कों को पढ़िए और इनसे अपनी सहमति-असहमति के कारण बताइए।
   (क) नेहा ने कहा कि द्वि-सदनीय प्रणाली से कोई उद्देश्य नहीं सधता।
   (ख) शमा का तर्क था कि राज्य सभा में विशेषज्ञों का मनोनयन होना चाहिए।
   (ग) त्रिदेव ने कहा कि यदि कोई देश संघीय नहीं है, तो फिर दूसरे सदन की ज़रूरत नहीं रह जाती।

3. लोकसभा कार्यपालिका को राज्यसभा की तुलना में क्यों कारगर ढंग से नियंत्रण में रख सकती है?

4. लोकसभा कार्यपालिका पर कारगर ढंग से नियंत्रण रखने की नहीं बल्कि जनभावनाओं और जनता की अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति का मंच है। क्या आप इससे सहमत हैं? कारण बताएँ।

5. नीचे संसद को ज़्यादा कारगर बनाने के कुछ प्रस्ताव लिखे जा रहे हैं। इनमें से प्रत्येक के साथ अपनी सहमति या असहमति का उल्लेख करें। यह भी बताएँ कि इन सुझावों को मानने के क्या प्रभाव होंगे?
   (क) संसद को अपेक्षाकृत ज़्यादा समय तक काम करना चाहिए।
   (ख) संसद के सदस्यों की सदन में मौजूदगी अनिवार्य कर दी जानी चाहिए।
   (ग) अध्यक्ष को यह अधिकार होना चाहिए कि सदन की कार्यवाही में बाधा पैदा करने पर सदस्य को दंडित कर सकें।

6. आरिफ यह जानना चाहता था कि अगर मंत्री ही अधिकांश महत्त्वपूर्ण विधेयक प्रस्तुत करते हैं और बहुसंख्यक दल अकसर सरकारी विधेयक को पारित कर देता है, तो फिर कानून बनाने की प्रक्रिया में संसद की भूमिका क्या है? आप आरिफ को क्या उत्तर देंगे?

© NCERT not to be republished

7. आप निम्नलिखित में से किस कथन से सबसे ज़्यादा सहमत हैं? अपने उत्तर का कारण दें।
   (क) सांसद/विधायकों को अपनी पसंद की पार्टी में शामिल होने की छूट होनी चाहिए।
   (ख) दलबदल विरोधी कानून के कारण पार्टी के नेता का दबदबा पार्टी के सांसद/विधायकों पर बढ़ा है।
   (ग) दलबदल हमेशा स्वार्थ के लिए होता है और इस कारण जो विधायक/सांसद दूसरे दल में शामिल होना चाहता है उसे आगामी दो वर्षों के लिए मंत्री-पद के अयोग्य करार कर दिया जाना चाहिए।

8. डॉली और सुधा में इस बात पर चर्चा चल रही थी कि मौजूदा वक्त में संसद कितनी कारगर और प्रभावकारी है। डॉली का मानना था कि भारतीय संसद के कामकाज में गिरावट आयी है। यह गिरावट एकदम साफ दिखती है क्योंकि अब बहस-मुबाहिसे पर समय कम खर्च होता है और सदन की कार्यवाही में बाधा उत्पन्न करने अथवा वॉकआउट (बहिर्गमन) करने में ज़्यादा। सुधा का तर्क था कि लोकसभा में अलग-अलग सरकारों ने मुँह की खायी है, धाराशायी हुई हैं। आप सुधा या डॉली के तर्क के पक्ष या विपक्ष में और कौन-सा तर्क देंगे?

9. किसी विधेयक को कानून बनने के क्रम में जिन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है उन्हें क्रमवार सजाएँ।
   (क) किसी विधेयक पर चर्चा के लिए प्रस्ताव पारित किया जाता है।
   (ख) विधेयक भारत के राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है - बताएँ कि वह अगर इस पर हस्ताक्षर नहीं करता/करती है, तो क्या होता है?
   (ग) विधेयक दूसरे सदन में भेजा जाता है और वहाँ इसे पारित कर दिया जाता है।
   (घ) विधेयक का प्रस्ताव जिस सदन में हुआ है उसमें यह विधेयक पारित होता है।
   (ङ) विधेयक की हर धारा को पढ़ा जाता है और प्रत्येक धारा पर मतदान होता है।
   (च) विधेयक उप-समिति के पास भेजा जाता है - समिति उसमें कुछ फेर-बदल करती है और चर्चा के लिए सदन में भेज देती है।
   (छ) संबद्ध मंत्री विधेयक की ज़रूरत के बारे में प्रस्ताव करता है।
   (ज) विधि-मंत्रालय का कानून-विभाग विधेयक तैयार करता है।

10. संसदीय समिति की व्यवस्था से संसद के विधायी कामों के मूल्यांकन और देखरेख पर क्या प्रभाव पड़ता है?

© NCERT not to be republished

अध्याय छः

न्यायपालिका

11103CH06

© NCERT not to be republished

परिचय

आम तौर पर न्यायालय को विभिन्न व्यक्तियों या निजी संस्थाओं के आपसी विवादों को सुलझाने वाले पंच के रूप में देखा जाता है। लेकिन न्यायपालिका कुछ महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कामों को भी अंजाम देती है। न्यायपालिका सरकार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय वास्तव में विश्व के सबसे शक्तिशाली न्यायालयों में से एक है। 1950 से ही न्यायपालिका ने संविधान की व्याख्या और सुरक्षा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मौलिक अधिकारों वाले अध्याय में हम पढ़ ही चुके हैं कि अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायपालिका बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इस अध्याय को पढ़ कर आप निम्नलिखित बातों को जान सकेंगे –

- *न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ,*
- *अधिकारों की सुरक्षा में भारतीय न्यायपालिका की भूमिका,*
- *संविधान की व्याख्या में न्यायपालिका की भूमिका और*
- *भारत की संसद और न्यायपालिका के आपसी संबंध।*

हमें स्वतंत्र न्यायपालिका क्यों चाहिए?

हर समाज में व्यक्तियों के बीच, समूहों के बीच और व्यक्ति समूह तथा सरकार के बीच विवाद उठते हैं। इन सभी विवादों को 'कानून के शासन के सिद्धांत' के आधार पर एक स्वतंत्र संस्था द्वारा हल किया जाना चाहिए। 'कानून के शासन' का भाव यह है कि धनी और गरीब, स्त्री और पुरुष तथा अगड़े और पिछड़े सभी लोगों पर एक समान कानून लागू हो। न्यायपालिका की प्रमुख भूमिका यह है कि वह 'कानून के शासन' की रक्षा और कानून की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करे। न्यायपालिका व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करती है, विवादों को कानून के अनुसार हल करती है और यह सुनिश्चित करती है कि लोकतंत्र की जगह किसी एक व्यक्ति या समूह की तानाशाही न ले ले। इसके लिए ज़रूरी है कि न्यायपालिका किसी भी राजनीतिक दबाव से मुक्त हो।

स्वतंत्र न्यायपालिका का क्या अर्थ है? यह स्वतंत्रता कैसे सुनिश्चित की जाती है?

न्यायपालिका की स्वतंत्रता

सीधे-सरल शब्दों में, न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ है कि –

- सरकार के अन्य दो अंग-विधायिका और कार्यपालिका-न्यायपालिका के कार्यों में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाए ताकि वह ठीक ढंग से न्याय कर सकें।
- सरकार के अन्य अंग न्यायपालिका के निर्णयों में हस्तक्षेप न करें।
- न्यायाधीश बिना भय या भेदभाव के अपना कार्य कर सकें।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ स्वेच्छाचारिता या उत्तरदायित्त्व का अभाव नहीं है। न्यायपालिका देश की लोकतांत्रिक राजनीतिक संरचना का एक हिस्सा है। न्यायपालिका देश के संविधान, लोकतांत्रिक परंपरा और जनता के प्रति जवाबदेह है।

कार्टून बूझें

.... एक प्रसिद्ध वकील होने के नाते आपको यह जानकारी होनी चाहिए कि आपका बरताव, खंड-ग, उप-खंड जी अठारह को भारतीय दंड विधान की धारा नौ (ख) के साथ पढ़ने पर और इस तथ्य के बावजूद....

यह अदालत है। कृपया मुठ्ठी बाँधकर बहस न करें।

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

© NCERT not to be republished

अध्याय दो में बताया गया मचल का मामला मुझे याद है। कहा जाता है कि इंसाफ में देरी करना इंसाफ से इन्कार करना है। किसी-न-किसी को इस सिलसिले में कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए।

न्यायपालिका को स्वतंत्रता कैसे दी जा सकती है और उसे सुरक्षित कैसे बनाया जा सकता है? भारतीय संविधान ने अनेक उपायों के द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित की है। न्यायाधीशों की नियुक्तियों के मामले में विधायिका को सम्मिलित नहीं किया गया है। इससे यह सुनिश्चित किया गया कि इन नियुक्तियों में दलगत राजनीति की कोई भूमिका नहीं रहे। न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति को वकालत का अनुभव या कानून का विशेषज्ञ होना चाहिए। उस व्यक्ति के राजनीतिक विचार या निष्ठाएँ उसकी नियुक्ति का आधार नहीं बननी चाहिए।

न्यायाधीशों का कार्यकाल निश्चित होता है। वे सेवानिवृत्त होने तक पद पर बने रहते हैं। केवल अपवाद स्वरूप विशेष स्थितियों में ही न्यायाधीशों को हटाया जा सकता है। इसके अलावा, उनके कार्यकाल को कम नहीं किया जा सकता। कार्यकाल की सुरक्षा के कारण न्यायाधीश बिना भय या भेदभाव के अपना काम कर पाते हैं। संविधान में न्यायाधीशों को हटाने के लिए बहुत कठिन प्रक्रिया निर्धारित की गई है। संविधान निर्माताओं का मानना था कि हटाने की प्रक्रिया कठिन हो, तो न्यायपालिका के सदस्यों का पद सुरक्षित रहेगा।

न्यायपालिका विधायिका या कार्यपालिका पर वित्तीय रूप से निर्भर नहीं है। संविधान के अनुसार न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते के लिए विधायिका की स्वीकृति नहीं ली जाएगी। न्यायाधीशों के कार्यों और निर्णयों की व्यक्तिगत आलोचना नहीं की जा सकती। अगर कोई न्यायालय की अवमानना का दोषी पाया जाता है, तो न्यायपालिका को उसे दंडित करने का अधिकार है। माना जाता है कि इस अधिकार से न्यायाधीशों को सुरक्षा मिलेगी और कोई उनकी नाजायज आलोचना नहीं कर सकेगा। संसद न्यायाधीशों के आचरण पर केवल तभी चर्चा कर सकती है जब वह उनको हटाने के प्रस्ताव पर विचार कर रही हो। इससे न्यायपालिका आलोचना के भय से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से निर्णय करती है।

© NCERT not to be republished

खुद करें — खुद सीखें

अपनी कक्षा में निम्नलिखित विषयों पर वाद-विवाद का आयोजन करें।

आपकी राय में निम्नलिखित में से कौन-कौन न्यायाधीशों के निर्णय को प्रभावित करते हैं? क्या आप इन्हें ठीक मानते हैं?

- संविधान
- पहले लिए गए फ़ैसले
- अन्य अदालतों की राय
- जनमत
- मीडिया
- कानून की परंपराएँ
- कानून
- समय और कर्मचारियों की कमी
- सार्वजनिक आलोचना का भय
- कार्यपालिका द्वारा कार्रवाई का भय

न्यायाधीशों की नियुक्ति

न्यायाधीशों की नियुक्ति कभी भी राजनीतिक रूप से निर्विवाद नहीं रही है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है। यह बात अपने आप में महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश कौन हैं। इससे संविधान की व्याख्या पर फर्क पड़ सकता है। न्यायाधीश का राजनीतिक दर्शन क्या है? सक्रिय और मुखर न्यायपालिका के बारे में उसकी क्या राय है? नियंत्रित और प्रतिबद्ध न्यायपालिका के विषय में उसके क्या विचार हैं? इन सब बातों का प्रभाव लागू किए जाने वाले कानूनों पर पड़ता है। मंत्रिमंडल, राज्यपाल, मुख्यमंत्री और भारत के मुख्य न्यायाधीश–ये सभी न्यायिक नियुक्ति की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के मामले में वर्षों से परंपरा बन गई है कि सर्वोच्च न्यायालय के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश को इस पद पर नियुक्त किया जाएगा। लेकिन इस परंपरा को दो बार तोड़ा भी गया है। 1973 में तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों को छोड़कर न्यायमूर्ति ए एन रे को भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। फिर 1975 में न्यायमूर्ति एच आर खन्ना को पीछे छोड़ते हुए न्यायमूर्ति एम एच बेग की नियुक्ति की गई।

मेरा तो सिर चकरा रहा है और कुछ समझ में नहीं आ रहा। लोकतंत्र में आप प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक की आलोचना कर सकते हैं, न्यायाधीशों की क्यों नहीं? और फिर, यह अदालत की अवमानना क्या बला है? क्या मैं ये सवाल करूँ तो मुझे 'अवमानना' का दोषी माना जाएगा?

© NCERT not to be republished

मेरा ख्याल है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में मंत्रिपरिषद् की बात को ज़्यादा तरजीह दी जानी चाहिए या फिर यह मान लें कि न्यायपालिका अपनी नियुक्ति आप ही करने वाला निकाय है।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह से करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि नियुक्तियों के संबंध में वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद् के पास है। फिर मुख्य न्यायाधीश से सलाह का क्या महत्त्व है?

1982 से 1998 के बीच यह विषय बार-बार सर्वोच्च न्यायालय के सामने आया। शुरू में न्यायालय का विचार था कि मुख्य न्यायाधीश की भूमिका पूरी तरह से सलाहकार की है। लेकिन बाद में न्यायालय ने माना कि मुख्य न्यायाधीश की सलाह राष्ट्रपति को ज़रूर माननी चाहिए। आखिरकार सर्वोच्च न्यायालय ने एक नई व्यवस्था की। इसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अन्य चार वरिष्ठतम् न्यायाधीशों की सलाह से कुछ नाम प्रस्तावित करेगा और इसी में से राष्ट्रपति नियुक्तियाँ करेगा। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने नियुक्तियों की सिफारिश के संबंध में सामूहिकता का सिद्धांत स्थापित किया। इसी कारण आजकल नियुक्तियों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीशों के समूह का ज़्यादा प्रभाव है। इस तरह न्यायपालिका की नियुक्ति में सर्वोच्च न्यायालय और मंत्रिपरिषद् महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

न्यायाधीशों को पद से हटाना

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से हटाना काफी कठिन है। कदाचार साबित होने अथवा अयोग्यता की दशा में ही उन्हें पद से हटाया जा सकता है। न्यायाधीश के विरुद्ध आरोपों पर संसद के एक विशेष बहुमत की स्वीकृति ज़रूरी होती है। क्या आप को याद है कि यह विशेष बहुमत क्या है? इसे हमने चुनाव वाले अध्याय में पढ़ा है। इससे स्पष्ट है कि न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया अत्यंत कठिन है और जब तक संसद के सदस्यों में आम सहमति न हो तब तक किसी न्यायाधीश को हटाया नहीं जा सकता। यह भी गौरतलब है कि जहाँ उनकी नियुक्ति में कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है वहीं उनको हटाने की शक्ति विधायिका के पास है। इसके द्वारा सुनिश्चित किया गया है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता बची रहे और शक्ति-संतुलन भी बना रहे। अब तक संसद के पास

© NCERT not to be republished

किसी न्यायाधीश को हटाने का केवल एक प्रस्ताव विचार के लिए आया है। इस मामले में हालाँकि दो-तिहाई सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया, लेकिन न्यायाधीश को हटाया नहीं जा सका क्योंकि प्रस्ताव पर सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत प्राप्त न हो सका।

न्यायाधीश को हटाने का असफल प्रयास

1991 में पहली बार संसद के 108 सदस्यों ने सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को हटाने के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए। न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी पर आरोप था कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में उन्होंने वित्तीय अनियमितता की। संसद ने उन्हें हटाने की प्रक्रिया शुरू की। इसके एक वर्ष बाद 1992 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक उच्च स्तरीय जाँच समिति ने न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रहते 'सार्वजनिक धन का निजी उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करने और संवैधानिक नियमों की धज्जी उड़ाने के कारण नैतिक पतन... तथा पद का जान-बूझकर गंभीर दुरुपयोग करने का दोषी पाया। इतने कठोर आरोपों के बाद भी रामास्वामी पर संसद में महाभियोग सिद्ध न हो सका। महाभियोग के प्रस्ताव के पक्ष में सदन में मौजूद और मतदान करने वाले सदस्यों के ज़रूरी दो-तिहाई मत तो पड़े लेकिन काँग्रेस पार्टी ने सदन में मतदान में भाग नहीं लिया। अतः प्रस्ताव को सदन की कुल सदस्य संख्या के आधे का समर्थन नहीं मिल पाया।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- न्यायपालिका की स्वतंत्रता क्यों महत्त्वपूर्ण है?
- क्या आपकी राय में कार्यपालिका के पास न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति होनी चाहिए?
- यदि आप से न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया में बदलाव करने का सुझाव देने को कहा जाय तो आप क्या सुझाव देंगे?

© NCERT not to be republished

न्यायपालिका की संरचना

भारतीय संविधान एकीकृत न्यायिक व्यवस्था की स्थापना करता है। इसका अर्थ यह है कि विश्व के अन्य संघीय देशों के विपरीत भारत में अलग से प्रांतीय स्तर के न्यायालय नहीं हैं। भारत में न्यायपालिका की संरचना पिरामिड की तरह है जिसमें सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय फिर उच्च न्यायालय तथा सबसे नीचे जिला और अधीनस्थ न्यायालय है। (नीचे चित्र में देखें) नीचे के न्यायालय अपने ऊपर के न्यायालयों की देखरेख में काम करते हैं।

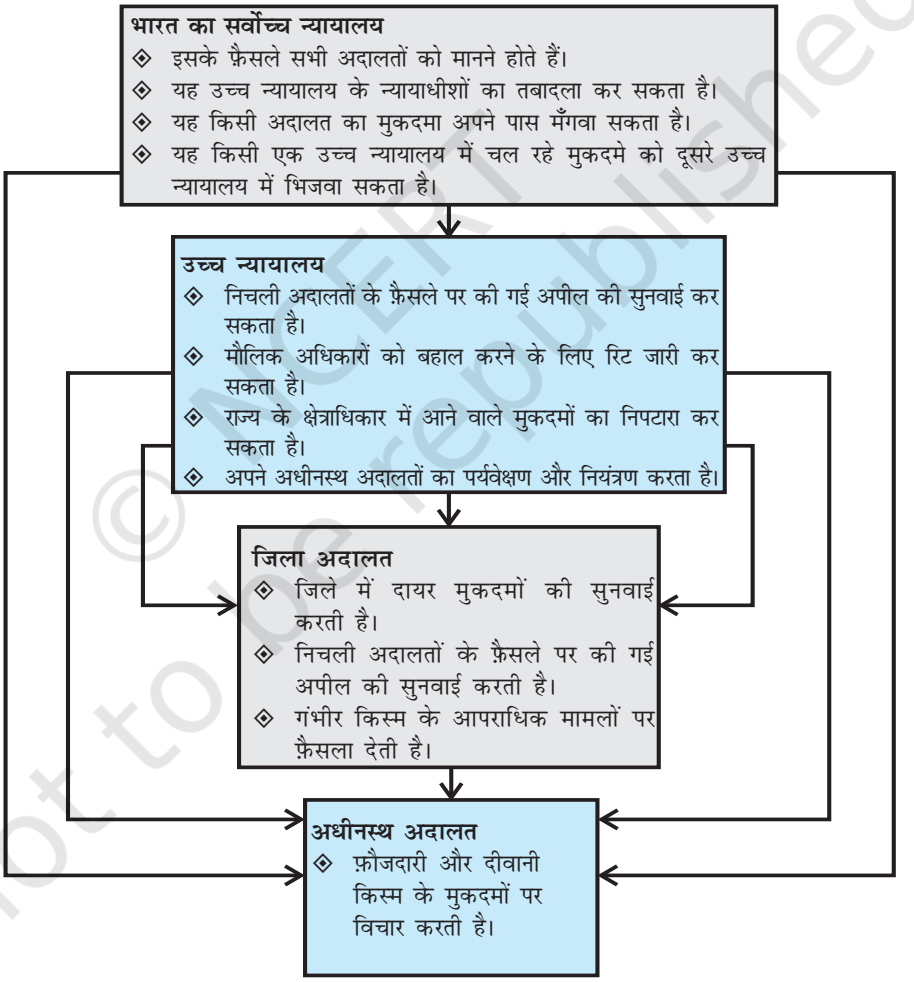

© NCERT not to be republished

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

भारत का सर्वोच्च न्यायालय विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायालयों में से एक है। लेकिन वह संविधान द्वारा तय की गई सीमा के अंदर ही काम करता है। सर्वोच्च न्यायालय के कार्य और उत्तरदायित्व संविधान में दर्ज हैं। सर्वोच्च न्यायालय को खास किस्म का क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

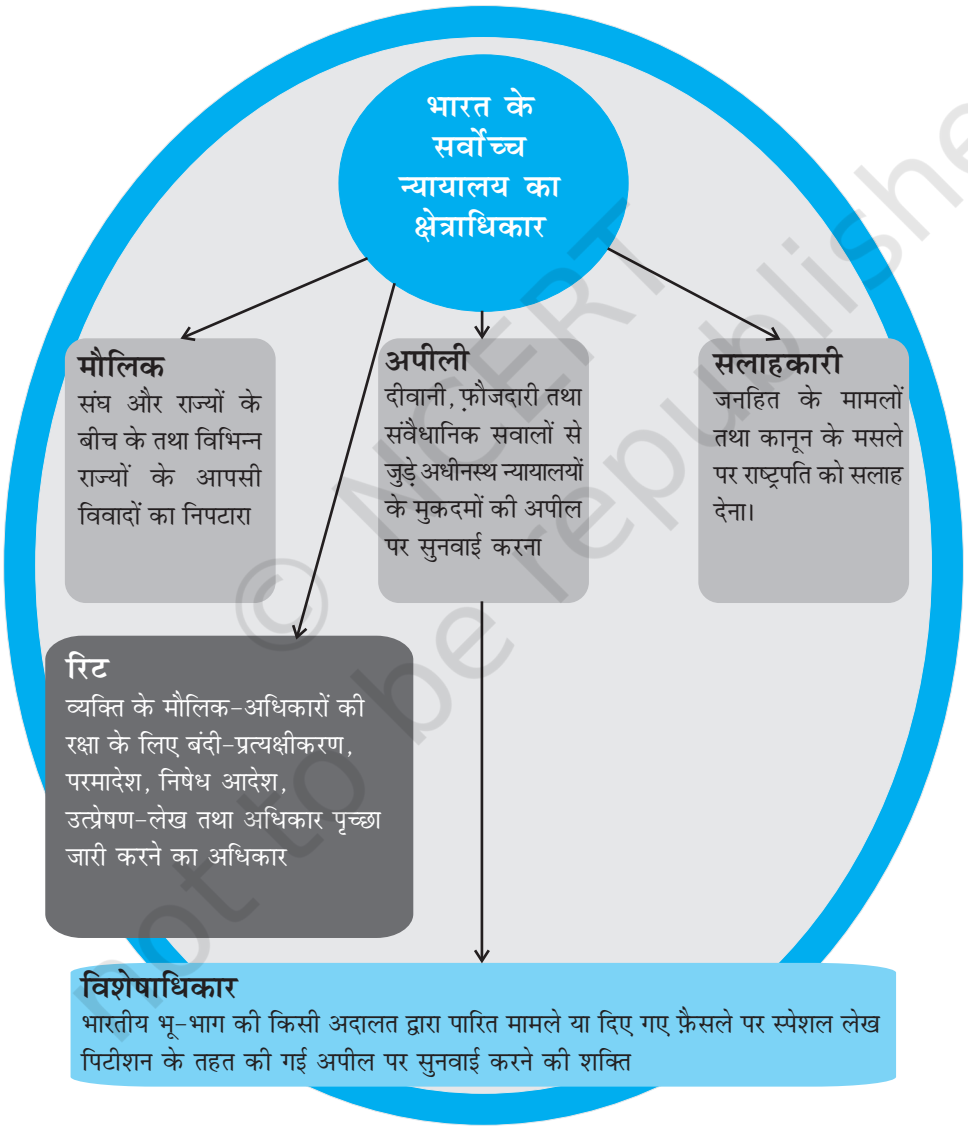

© NCERT not to be republished

मौलिक क्षेत्राधिकार

मौलिक क्षेत्राधिकार का अर्थ है कि कुछ मुकदमों की सुनवाई सीधे सर्वोच्च न्यायालय कर सकता है। ऐसे मुकदमों में पहले निचली अदालतों में सुनवाई ज़रूरी नहीं। ऊपर के चित्र में आपने देखा कि संघीय संबंधों से जुड़े मुकदमे सीधे सर्वोच्च न्यायालय में जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय का मौलिक क्षेत्राधिकार उसे संघीय मामलों से संबंधित सभी विवादों में एक अंपायर या निर्णायक की भूमिका देता है। किसी भी संघीय व्यवस्था में केंद्र और राज्यों के बीच तथा विभिन्न राज्यों में परस्पर कानूनी विवादों का उठना स्वाभाविक है। इन विवादों को हल करने की ज़िम्मेदारी सर्वोच्च न्यायालय की है। इसे मौलिक क्षेत्राधिकार इसलिए कहते हैं क्योंकि इन मामलों को केवल सर्वोच्च न्यायालय ही हल कर सकता है। इनकी सुनवाई न तो उच्च न्यायालय और न ही अधीनस्थ न्यायालयों में हो सकती है। अपने इस अधिकार का प्रयोग कर सर्वोच्च न्यायालय न केवल विवादों को सुलझाता है बल्कि संविधान में दी गई संघ और राज्य सरकारों की शक्तियों की व्याख्या भी करता है।

'रिट' संबंधी क्षेत्राधिकार

जैसा कि आपने मौलिक अधिकारों वाले अध्याय में पढ़ा कि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर कोई भी व्यक्ति इंसाफ पाने के लिए सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय अपने विशेष आदेश रिट के रूप में दे सकता है। उच्च न्यायालय भी रिट जारी कर सकते हैं। लेकिन जिस व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है उसके पास विकल्प है कि वह चाहे तो उच्च न्यायालय या सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। इन रिटों के माध्यम से न्यायालय कार्यपालिका को कुछ करने या न करने का आदेश दे सकता है।

अपीली क्षेत्राधिकार

सर्वोच्च न्यायालय अपील का उच्चतम न्यायालय है। कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। लेकिन उच्च न्यायालय को यह प्रमाणपत्र देना पड़ता है कि वह मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने लायक है अर्थात् उसमें संविधान या कानून की व्याख्या करने जैसा कोई गंभीर मामला उलझा है। अगर फ़ौजदारी के मामले में निचली अदालत किसी को फाँसी की सज़ा दे दे, तो उसकी अपील सर्वोच्च या उच्च न्यायालय में की जा सकती है। यदि किसी मुकदमे में उच्च न्यायालय अपील की आज्ञा न दे तब भी सर्वोच्च न्यायालय के पास यह शक्ति है कि वह उस मुकदमे में की गई अपील

© NCERT not to be republished

को विचार के लिए स्वीकार कर ले। अपीली क्षेत्राधिकार का मतलब यह है कि सर्वोच्च न्यायालय पूरे मुकदमे पर पुनर्विचार करेगा और उसके कानूनी मुद्दों की दुबारा जाँच करेगा। यदि न्यायालय को लगता है कि कानून या संविधान का वह अर्थ नहीं है जो निचली अदालतों ने समझा तो सर्वोच्च न्यायालय उनके निर्णय को बदल सकता है तथा इसके साथ उन प्रावधानों की नई व्याख्या भी दे सकता है।

उच्च न्यायालयों को भी अपने नीचे की अदालतों के निर्णय के विरुद्ध अपीली क्षेत्राधिकार है।

सलाह संबंधी क्षेत्राधिकार

मौलिक और अपीली क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय का परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार भी है। इसके अनुसार, भारत का राष्ट्रपति लोकहित या संविधान की व्याख्या से संबंधित किसी विषय को सर्वोच्च न्यायालय के पास परामर्श के लिए भेज सकता है। लेकिन न तो सर्वोच्च न्यायालय ऐसे किसी विषय पर सलाह देने के लिए बाध्य है और न ही राष्ट्रपति न्यायालय की सलाह मानने को।

फिर सर्वोच्च न्यायालय के परामर्श देने की शक्ति की क्या उपयोगिता है? इसकी दो मुख्य उपयोगिताएँ हैं– पहली, इससे सरकार को छूट मिल जाती है कि किसी महत्त्वपूर्ण मसले पर कार्रवाई करने से पहले वह अदालत की कानूनी राय जान ले। इससे बाद में कानूनी विवाद से बचा जा सकता है। दूसरी, सर्वोच्च न्यायालय की सलाह मानकर सरकार अपने प्रस्तावित निर्णय या विधेयक में समुचित संशोधन कर सकती है।

क्या यह बात अपने आप में मज़ेदार नहीं लगती कि सलाह देना, सलाह देने वाले की मर्जी पर और उसको मानना या न मानना, सलाह सुनने वाले की मर्जी पर निर्भर है। मैं तो यही सोचकर चल रहा था कि अदालतें फैसला सुनाती हैं जिन्हें सबको मानना होता है।

अनुच्छेद 137 "...उच्चतम न्यायालय को अपने द्वारा सुनाए गए निर्णय या दिए गए आदेश का पुनरावलोकन करने की शक्ति होगी।"

अनुच्छेद 144 "भारत के राज्य-क्षेत्र के सभी सिविल और न्यायिक प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता से कार्य करेंगे।"

© NCERT not to be republished

सर्वोच्च न्यायालय को अपने ही फ़ैसले को बदलने की इजाज़त क्यों दी गई है? क्या ऐसा यह मानकर किया गया है कि अदालत से भी चूक हो सकती है? क्या यह संभव है कि फ़ैसले पर पुनर्विचार करने के लिए जो खंडपीठ बैठी है उसमें वह न्यायाधीश भी शामिल हो, जो फ़ैसला सुनाने वाली खंडपीठ में था?

पिछले पृष्ठ पर दिए गए अनुच्छेदों को पढ़ें। ये अनुच्छेद हमें भारत के न्यायपालिका की एकीकृत प्रकृति और सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों को समझने में मदद करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के फ़ैसले भारतीय भू-भाग के अन्य सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी हैं। उसके द्वारा दिए गए निर्णय संपूर्ण देश में लागू होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय स्वयं अपने निर्णयों से बाध्य नहीं है और कभी भी उसकी समीक्षा कर सकता है। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय की अवमानना के मामले भी वे स्वयं ही देखता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

'निम्नलिखित दो सूचियों को सुमेलित करें।

(क) बिहार और भारत सरकार के मध्य विवाद की सुनवाई कौन करेगा?	(1) उच्च न्यायालय
(ख) हरियाणा के जिला न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील कहाँ की जाएगी?	(2) परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार
(ग) एकीकृत न्यायपालिका	(3) न्यायिक पुनर्निरीक्षण
(घ) किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करना	(4) मौलिक क्षेत्राधिकार
	(5) सर्वोच्च न्यायालय
	(6) एकल संविधान

न्यायिक सक्रियता

क्या आपने न्यायिक सक्रियता अथवा जनहित याचिका के बारे में सुना है? आजकल न्यायपालिका पर चर्चा में इन दोनों शब्दों का अकसर प्रयोग होता है। अनेक लोगों का मानना है कि इन दोनों ने न्यायपालिका के कार्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर उन्हें पहले से अधिक जनोन्मुखी बना दिया है।

भारत में न्यायिक सक्रियता का मुख्य साधन जनहित याचिका या सामाजिक व्यवहार याचिका (Social Action Litigation) रही है। आखिर

© NCERT not to be republished

कार्टून बूझें

क्या आप जानते हैं कि हाल के दिनों में न्यायपालिका ने 'बंद' और 'हड़ताल' को अपने फ़ैसले में अवैध करार दिया है।

'जनहित याचिका' है क्या? कब और कैसे इसकी शुरुआत हुई? कानून की सामान्य प्रक्रिया में कोई व्यक्ति तभी अदालत जा सकता है जब उसका कोई व्यक्तिगत नुकसान हुआ हो। इसका मतलब यह है कि अपने अधिकार का उल्लंघन होने पर या किसी विवाद में फँसने पर कोई व्यक्ति इंसाफ पाने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटा सकता है। 1979 में इस अवधारणा में बदलाव आया। 1979 में इस बदलाव की शुरुआत करते हुए न्यायालय ने एक ऐसे मुकदमे की सुनवाई करने का निर्णय लिया जिसे पीड़ित लोगों ने नहीं बल्कि उनकी ओर से दूसरों ने दाखिल किया था। चूँकि इस मामले में जनहित से संबंधित एक मुद्दे पर विचार हो रहा था अत: इसे और ऐसे ही अन्य अनेक मुकदमों को जनहित याचिकाओं का नाम दिया गया। उसी समय सर्वोच्च न्यायालय ने कैदियों के अधिकार से संबंधित मुकदमे पर भी विचार किया। इससे ऐसे मुकदमों की बाढ़-सी आ गई जिसमें जन सेवा की भावना रखने वाले नागरिकों तथा स्वयंसेवी संगठनों ने अधिकारों की रक्षा, गरीबों के जीवन को और बेहतर बनाने, पर्यावरण की सुरक्षा और लोकहित से जुड़े अनेक मुद्दों पर न्यायपालिका से हस्तक्षेप की माँग की। जनहित याचिका न्यायिक सक्रियता का सबसे प्रभावी साधन हो गई है।

© NCERT not to be republished

मैंने कुछ लोगों को कहते सुना है कि जनहित याचिका का असली मतलब होता है 'निजी हित की याचिका'। ऐसा क्यों भला?

किसी के द्वारा मुकदमा करने पर उस मुद्दे पर विचार करने के बजाय न्यायपालिका ने अखबार में छपी खबरों और डाक से प्राप्त शिकायतों को आधार बना कर उन पर विचार करना शुरू कर दिया। इस तरह न्यायपालिका की यह नई भूमिका न्यायिक सक्रियता के रूप में लोकप्रिय हुई।

कुछ प्रारंभिक जनहित याचिकाएँ

- 1979 में समाचार पत्रों में विचाराधीन कैदियों के बारे में कुछ खबरें छपीं। बिहार की जेलों में कैदियों को काफी लंबी अवधि से बंदी बना कर रखा जा रहा था। जिन अपराधों के लिए उन्हें गिरफ़्तार किया गया था, यदि उसमें उन्हें सज़ा हो जाती तो भी वे उतनी लंबी अवधि के लिए कैद नहीं किए जा सकते थे। इस खबर को आधार बना कर एक वकील ने एक याचिका दायर की। सर्वोच्च न्यायालय में यह मुकदमा चला। यह पहली जनहित याचिका के रूप में प्रसिद्ध हुई। इस मुकदमे को हुसैनारा खातून बनाम बिहार सरकार के नाम से जाना जाता है।
- 1980 में तिहाड़ जेल के एक बंदी ने सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश कृष्णा अय्यर को एक पत्र भेजा। इसमें बंदियों को दी जाने वाली शारीरिक यातनाओं का वर्णन किया गया था। न्यायाधीश ने उसे ही एक याचिका मान लिया। यद्यपि बाद में न्यायालय ने पत्रों को याचिका के रूप में स्वीकार करने की प्रथा समाप्त कर दी, लेकिन यह मुकदमा 'सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1980)' के नाम से शुरुआती जनहित याचिका के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

जनहित याचिकाओं के माध्यम से न्यायालय ने अधिकारों का दायरा बढ़ा दिया। शुद्ध हवा-पानी और अच्छा जीवन पाना पूरे समाज का अधिकार है। न्यायालय का मानना था कि समाज के सदस्य के रूप में, अधिकारों के उल्लंघन पर व्यक्तियों को इंसाफ की गुहार लगाने का अधिकार है।

इसके अतिरिक्त 1980 के बाद जनहित याचिकाओं और न्यायिक सक्रियता के द्वारा न्यायपालिका ने उन मामलों में भी रूचि दिखाई जहाँ समाज के कुछ वर्गों के लोग आसानी से अदालत की शरण नहीं ले सकते। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए न्यायालय ने जन सेवा की भावना से भरे नागरिक, सामाजिक संगठन और वकीलों को समाज के ज़रूरतमंद और गरीब लोगों की ओर से याचिकाएँ दायर करने की इज़ाज़त दी।

© NCERT not to be republished

यह बात ज़रूर याद रहे कि गरीबों की समस्याएँ ऐसे लोगों की समस्याओं से गुणात्मक रूप से अलग हैं जिन पर अब तक अदालत का ध्यान रहा है। ...गरीबों के प्रति इंसाफ का अलग नज़रिया अपनाने की ज़रूरत है। यदि हम गरीबों के मामले में आँख मूँदकर इंसाफ की कोई प्रतिकूल प्रक्रिया अपनाते हैं, तो वे कभी भी अपने मौलिक अधिकारों का इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे।

(न्यायमूर्ति भगवती – बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत सरकार, 1984)

खुद करें — खुद सीखें

जनहित याचिका के माध्यम से दायर कम-से-कम एक मुकदमे का ब्यौरा जुटाएँ और पता करें कि किस प्रकार उस मामले से जनता के हित की रक्षा हुई।

न्यायिक सक्रियता का हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर बहुत प्रभाव पड़ा। इससे न केवल व्यक्तियों बल्कि विभिन्न समूहों को भी अदालत जाने का अवसर मिला। इसने न्याय व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाया और कार्यपालिका उत्तरदायी बनने पर बाध्य हुई चुनाव प्रणाली को भी इसने ज़्यादा मुक्त और निष्पक्ष बनाने का प्रयास किया। न्यायालय ने चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों को अपनी संपत्ति, आय और शैक्षणिक योग्यताओं के संबंध में शपथपत्र देने का निर्देश दिया, जिससे लोग सही जानकारी के आधार पर अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकें।

जनहित याचिकाओं की बढ़ती संख्या और सक्रिय न्यायपालिका के विचार का एक नकारात्मक पहलू भी है। इससे न्यायालयों में काम का बोझ बढ़ा है। दूसरे, न्यायिक सक्रियता से विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यों के बीच का अंतर धुँधला हो गया है। न्यायालय उन समस्याओं में उलझ गया जिसे कार्यपालिका को हल करना चाहिए।

मेरा खयाल है कि न्यायिक सक्रियता का रिश्ता कार्यपालिका और विधायिका को यह बताने से है कि उन्हें क्या करना चाहिए। यदि विधायिका और कार्यपालिका ने भी फ़ैसला सुनाना शुरू कर दिया तो फिर क्या होगा?

© NCERT not to be republished

उदाहरण के लिए, वायु और ध्वनि प्रदूषण दूर करना, भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच करना या चुनाव सुधार करना वास्तव में न्यायपालिका के काम नहीं है। ये सभी कार्य विधायिका की देखरेख में प्रशासन को करना चाहिए। इसलिए कुछ लोगों का मानना है कि न्यायिक सक्रियता से सरकार के तीनों अंगों के बीच पारस्परिक संतुलन रखना बहुत मुश्किल हो गया है। लोकतांत्रिक शासन का आधार यह है कि सरकार का हर अंग एक-दूसरे की शक्तियों और क्षेत्राधिकार का सम्मान करें। न्यायिक सक्रियता से इस लोकतांत्रिक सिद्धांत को आघात पहुँच सकता है।

आप एक न्यायाधीश हैं

नागरिकों का एक समूह जनहित याचिका के माध्यम से न्यायालय जाकर प्रार्थना करता है कि वह शहर की नगरपालिका के अधिकारियों को झुग्गी-झोपड़ियाँ हटाने और शहर को सुंदर बनाने का काम करने के आदेश दे, ताकि शहर में पूँजी निवेश करने वालों को आकर्षित किया जा सके। उनका तर्क है कि ऐसा करना जनहित में है। झुग्गी-झोपड़ी में रहने वालों का पक्ष है कि ऐसा करने पर उनके 'जीवन के अधिकार' का हनन होगा। उनका तर्क है कि जनहित के लिए साफ-सुथरे शहर के अधिकार से ज़्यादा जीवन का अधिकार महत्त्वपूर्ण है।

कल्पना करें कि आप एक न्यायाधीश हैं। आप एक निर्णय लिखें और तय करें कि इस 'जनहित याचिका' में जनहित का मुद्दा है या नहीं ?

न्यायपालिका और अधिकार

हम पहले ही देख चुके हैं कि न्यायपालिका को व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व सौंपा गया है। संविधान ऐसी दो विधियों का वर्णन करता है जिससे सर्वोच्च न्यायालय अधिकारों की रक्षा कर सके–

- पहला, यह अनेक रिट; जैसे– बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश आदि जारी करके मौलिक अधिकारों को फिर से स्थापित कर सकता है। (अनुच्छेद 32)। उच्च न्यायालयों को भी ऐसी रिट जारी करने की शक्ति है (अनुच्छेद 226)।
- दूसरा, सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून को गैर-संवैधानिक घोषित कर उसे लागू होने से रोक सकता है (अनुच्छेद 13)।

© NCERT not to be republished

ये दोनों प्रावधान एक ओर सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मौलिक अधिकार के संरक्षक तथा दूसरी ओर संविधान के व्याख्याकार के रूप में स्थापित करते हैं। उपर्युक्त प्रावधानों में दूसरा प्रावधान न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था करता है।

सर्वोच्च न्यायालय की सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति संभवतया न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति है। न्यायिक पुनरावलोकन का अर्थ है कि सर्वोच्च न्यायालय किसी भी कानून की संवैधानिकता जाँच सकता है और यदि वह संविधान के प्रावधानों के विपरीत हो, तो न्यायालय उसे गैर-संवैधानिक घोषित कर सकता है। संविधान में कहीं भी न्यायिक पुनरावलोकन शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। लेकिन भारत में संविधान लिखित है और इसमें दर्ज है कि मूल अधिकारों के विपरीत होने पर सर्वोच्च न्यायालय किसी भी कानून को निरस्त कर सकता है। इन तथ्यों के कारण भारत के संविधान में 'न्यायिक पुनरावलोकन' शब्द का प्रयोग न होने पर यह शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है।

इसके अलावा हमने सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का अध्ययन करते समय देखा कि संघीय संबंधों के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय अपनी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग कर सकता है। ऐसा करके वह किसी भी कानून को संविधान में निहित शक्ति के बँटवारे की योजना के विरुद्ध होने से रोकता है। मान लीजिए कि केंद्र सरकार कोई कानून बनाए और कुछ राज्यों को ऐसा लगे कि इस कानून का विषय तो राज्य सूची में है। तब वे सर्वोच्च न्यायालय जा सकते हैं और यदि न्यायालय उनसे सहमत हो, तो वह उस कानून को असंवैधानिक घोषित कर सकता है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा ऐसे किसी भी कानून का परीक्षण कर सकता है, जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो या संविधान में शक्ति-विभाजन योजना के प्रतिकूल हो। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति राज्यों की विधायिका द्वारा बनाए कानूनों पर भी लागू होती है।

रिट जारी करने की और न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियाँ सर्वोच्च न्यायालय को अत्यंत शक्तिशाली बना देती है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का मतलब यह हुआ कि न्यायपालिका विधायिका द्वारा पारित कानूनों की और संविधान की व्याख्या कर सकती है। अनेक लोगों का मानना है कि इसके द्वारा न्यायपालिका प्रभावी ढंग से संविधान की रक्षा करती है और नागरिकों के अधिकारों की भी रक्षा करती है। जनहित याचिकाओं ने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने की न्यायपालिका की शक्ति में बढ़ोत्तरी की है।

मेरा खयाल है कि मैं न्यायाधीश ही बनूँ तो अच्छा है! फिर मुझे चुनाव और जन-समर्थन की चिंता नहीं करनी पड़ेगी और तब भी मेरे पास बहुत-सी शक्तियाँ होंगी!

© NCERT not to be republished

क्या आप जानते हैं कि और भी अनेक देशों में जनहित याचिकाएँ धीरे-धीरे लोकप्रिय हो रही हैं? विश्व के अनेक न्यायालयों खासतौर से दक्षिण एशिया और अफ्रीका में भारत की ही भाँति न्यायिक सक्रियता का प्रयोग किया जा रहा है। लेकिन दक्षिण अफ्रीका के संविधान में जनहित याचिका को मौलिक अधिकारों की सूची में सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका में अब नागरिक का यह मौलिक अधिकार है कि वह संवैधानिक न्यायालय के सामने व्यक्तियों के अधिकारों के उल्लंघन का मामला उठा सके।

क्या आपको याद है कि अधिकार से संबंधित अध्याय में हमने शोषण के विरुद्ध अधिकार का उल्लेख किया था। यह अधिकार बंधुआ मज़दूरी, लोगों की खरीद-फरोख्त और खतरनाक कामों में बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाता है। लेकिन प्रश्न यह है कि जिन लोगों के अधिकारों का उल्लंघन होता है, वे अदालत का दरवाज़ा कैसे खटखटाएँ? जनहित याचिकाओं और न्यायिक सक्रियता से न्यायालयों के लिए यह संभव हो पाया है कि वे ऐसे उल्लंघनों के मामले पर विचार कर सकें। इससे न्यायालय ने अनेक मुद्दों पर विचार किया, जैसे– जेल के अंदर पुलिस द्वारा कैदियों की आँखें फोड़ना, पत्थर की खदानों में काम करने की अमानवीय दशा, बच्चों का यौन-शोषण आदि। इस प्रवृत्ति ने गरीब व पिछड़े वर्ग के लोगों के अधिकारों को अर्थपूर्ण बना दिया है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग कब करता है?
- न्यायिक पुनरावलोकन और रिट में क्या फर्क है?

न्यायपालिका और संसद

न्यायपालिका ने अधिकार के मुद्दे पर तो सक्रियता दिखाई ही है, राजनैतिक व्यवहार-बरताव से संविधान को ठेंगा दिखाने की प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगाया है। इसी कारण जो विषय पहले न्यायिक पुनरावलोकन के दायरे में नहीं थे उन्हें भी अब इस दायरे में ले लिया गया है, जैसे– राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियाँ।

© NCERT not to be republished

ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने न्याय की स्थापना के लिए कार्यपालिका की संस्थाओं को निर्देश दिए। जैसे उसने हवाला मामले, नरसिंह राव मामले और पेट्रोल पंपों के अवैध आबंटन जैसे अनेक मामलों में सीबीआई (केंद्रीय जाँच ब्यूरो) को निर्देश दिया कि वह भ्रष्ट राजनेताओं और नौकरशाहों के विरुद्ध जाँच करे। आपने इनमें से कुछ के बारे में सुना होगा। इनमें से कई उदाहरण न्यायिक सक्रियता के परिणाम हैं।

भारतीय संविधान शक्ति के सीमित बँटवारे, अवरोध तथा संतुलन के एक सुंदर सिद्धांत पर आधारित है। इसका मतलब यह है कि सरकार के प्रत्येक अंग का एक स्पष्ट कार्य क्षेत्र है। संसद कानून बनाने और संविधान का संशोधन करने में सर्वोच्च है, कार्यपालिका उन्हें लागू करने तथा न्यायपालिका विवादों को सुलझाने और यह सुनिश्चित करने में सर्वोच्च है कि क्या बनाए गए कानून संविधान के अनुकूल हैं। इस स्पष्ट कार्य विभाजन के बावजूद संसद और न्यायपालिका तथा कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच टकराव भारतीय राजनीति की विशेषता रही है।

हमने संपत्ति के अधिकार और संसद की संविधान को संशोधित करने की शक्ति के संबंध में संसद और न्यायपालिका के बीच हुए टकराव का पीछे उल्लेख किया है। आइए इसे एक बार फिर दुहरा लें।

संविधान लागू होने के तुरंत बाद संपत्ति के अधिकार पर रोक लगाने की संसद की शक्ति पर विवाद खड़ा हो गया। संसद संपत्ति रखने के अधिकार पर कुछ प्रतिबंध लगाना चाहती थी जिससे भूमि-सुधारों को लागू किया जा सके। न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती। संसद ने तब संविधान को संशोधित करने का प्रयास किया। लेकिन न्यायालय ने कहा कि संविधान के संशोधन के द्वारा भी मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं किया जा सकता।

संसद और न्यायपालिका के बीच विवाद के केंद्र में निम्नलिखित मुद्दे थे-

- निजी संपत्ति के अधिकार का दायरा क्या है?
- मौलिक अधिकारों को सीमित, प्रतिबंधित और समाप्त करने की संसद की शक्ति का दायरा क्या है?
- संसद द्वारा संविधान संशोधन करने की शक्ति का दायरा क्या है ?
- क्या संसद नीति निर्देशक तत्वों को लागू करने के लिए ऐसे कानून बना सकती है जो मौलिक अधिकारों को प्रतिबंधित करे?

© NCERT not to be republished

जहाँ न्यायिक स्वतंत्रता को बनाए रखने की ज़रूरत पर कोई दो राय नहीं हो सकती ... वहीं हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत को भी याद रखना जरूरी है। स्वतंत्रता के सिद्धांत को उस स्तर तक नहीं ले जाया जाना चाहिए जहाँ वह आस्था का स्थान ले ले। अन्यथा न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के काम भी अपने हाथ में ले लेने वाली एक अतिवादी संस्था की तरह काम करने लगेगी। न्यायपालिका का काम संविधान की व्याख्या करना या अधिकारों के बारे में चल रहे विवादों को हल करना है ...

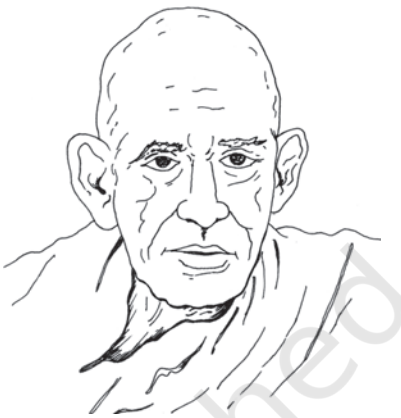

अलादि कृष्णास्वामी अय्यर
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 837, 23 नवंबर 1949

1967 से 1973 के बीच यह विवाद काफी गहरा गया। भूमि-सुधार कानूनों के अतिरिक्त निवारक नज़रबंदी कानून, नौकरियों में आरक्षण संबंधी कानून, सार्वजनिक उद्देश्य के लिए निजी संपत्ति के अधिग्रहण संबंधी नियम और अधिग्रहीत निजी संपत्ति के मुआवज़े संबंधी कानून आदि ऐसे कुछ उदाहरण हैं जिन पर विधायिका और न्यायपालिका के बीच विवाद हुए।

1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय दिया जो संसद और न्यायपालिका के संबंधों के नियमन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। यह केशवानंद भारती मुकदमे के रूप में प्रसिद्ध है। इस मुकदमें में न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान का एक मूल ढाँचा है और संसद सहित कोई भी उस मूल ढाँचे से छेड़-छाड़ नहीं कर सकता। संविधान संशोधन द्वारा भी इस मूल ढाँचे को नहीं बदला जा सकता। न्यायालय ने दो और काम किए। संपत्ति के अधिकार के विवादास्पद मुद्दे के बारे में न्यायालय ने कहा कि यह मूल ढाँचे का हिस्सा नहीं है और इसलिए उस पर समुचित प्रतिबंध लगाया जा सकता है। दूसरा, न्यायालय ने यह निर्णय करने का अधिकार अपने पास रखा कि कोई मुद्दा मूल ढाँचे का हिस्सा है या नहीं। यह निर्णय न्यायपालिका द्वारा संविधान की व्याख्या करने की शक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है।

इस निर्णय ने विधायिका और न्यायपालिका के बीच विवादों की प्रकृति ही बदल दी। जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की

© NCERT not to be republished

सूची से 1979 में हटा दिया गया और इससे शासन के इन दो अंगों के बीच संबंधों की प्रकृति बदल गई।

फिर भी इन दोनों के बीच विवाद के कुछ बिंदु बचे हैं। जैसे क्या न्यायपालिका विधायिका की कार्यवाही का नियमन और उसमें हस्तक्षेप कर उसे नियंत्रित कर सकती है? संसदीय व्यवस्था में संसद को अपना संचालन खुद करने तथा अपने सदस्यों का व्यवहार नियंत्रित करने की शक्ति है। संसदीय-व्यवस्था में विधायिका को विशेषाधिकार के हनन का दोषी पाए जाने पर अपने सदस्य को दंडित करने का अधिकार है। जो व्यक्ति विधायिका के विशेषाधिकार हनन का दोषी हो क्या वह न्यायालय की शरण ले सकता है? सदन के किसी सदस्य के विरुद्ध स्वयं सदन द्वारा यदि कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाती है तो क्या वह सदस्य न्यायालय से सुरक्षा प्राप्त कर सकता है? ये मुद्दे अभी भी सुलझ नहीं पाए हैं और दोनों के बीच विवाद का विषय बने रहते हैं। इसी प्रकार संविधान यह व्यवस्था करता है कि न्यायाधीशों के आचरण पर संसद में चर्चा नहीं हो सकती। लेकिन अनेक अवसरों पर संसद और राज्यों की विधान सभाओं में न्यायपालिका के आचरण पर अंगुली उठाई गई। इसी प्रकार न्यायपालिका ने भी अनेक अवसरों पर विधायिका की आलोचना की है और उन्हें उनके विधायी कार्यों के संबंध में निर्देश दिए हैं। विधायिका इसे संसदीय संप्रभुता के सिद्धांत के उल्लंघन के रूप में देखती है।

इन मुद्दों से यह स्पष्ट होता है कि सरकार के किन्हीं दो अंगों के बीच संतुलन कितना संवेदनशील है और लोकतंत्र में सरकार के एक अंग का दूसरे अंग की सत्ता के प्रति सम्मान बरतना कितना ज़रूरी है।

अदालत हमें एक बार साफ-साफ क्यों नहीं बता देती कि आखिर संविधान के वे पहलू क्या हैं, जिन्हें 'मूल ढ़ाँचा' कहा जाता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

न्यायपालिका और संसद के बीच टकराव के मुद्दे रहे हैं-

- न्यायाधीशों की नियुक्ति
- न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते
- संसद के द्वारा संविधान संशोधन का दायरा
- संसद द्वारा न्यायपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप

© NCERT not to be republished

निष्कर्ष

इस अध्याय में आपने अपनी लोकतांत्रिक संरचना में न्यायपालिका की भूमिका का अध्ययन किया है। न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच समय-समय पर उठने वाले विवादों के बावजूद न्यायपालिका की साख बढ़ी है। न्यायपालिका से कुछ और भी अपेक्षाएँ हैं। आम आदमी को आश्चर्य होता है कि किस आसानी से अनेक दोषी लोग न्यायपालिका से बेदाग बरी हो जाते हैं और कैसे धनी और दबंगों के असर में गवाह अपने बयान से मुकर जाते हैं। ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनके बारे में स्वयं न्यायपालिका भी चिंतित है।

इस अध्याय में आपने देखा कि भारत में न्यायपालिका बहुत शक्तिशाली संस्था है। इस शक्ति ने बड़े आश्चर्य और बहुत-सी आशाओं को जन्म दिया है।

भारतीय न्यायपालिका अपनी स्वतंत्रता के लिए भी जानी जाती है। अनेक निर्णयों के माध्यम से न्यायपालिका ने संविधान की नई व्याख्याएँ दीं और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की। जैसा कि हमने इस अध्याय में देखा लोकतंत्र वास्तव में विधायिका और न्यायपालिका के बीच एक अत्यंत संवेदनशील संतुलन पर आधारित है और इन दोनों को संविधान की सीमाओं के अंदर ही रहकर कार्य करना पड़ता है।

कार्टून बूझें

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

आखिरकार मैं बाइज़्ज़त बरी हो गया। डरावने सपने जैसा था यह सब कुछ। अब मैं कभी भी भ्रष्टाचार में शामिल नहीं होऊँगा। कसम से।

सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने में न्यायपालिका किस तरह सक्रिय रहती है?

© NCERT not to be republished

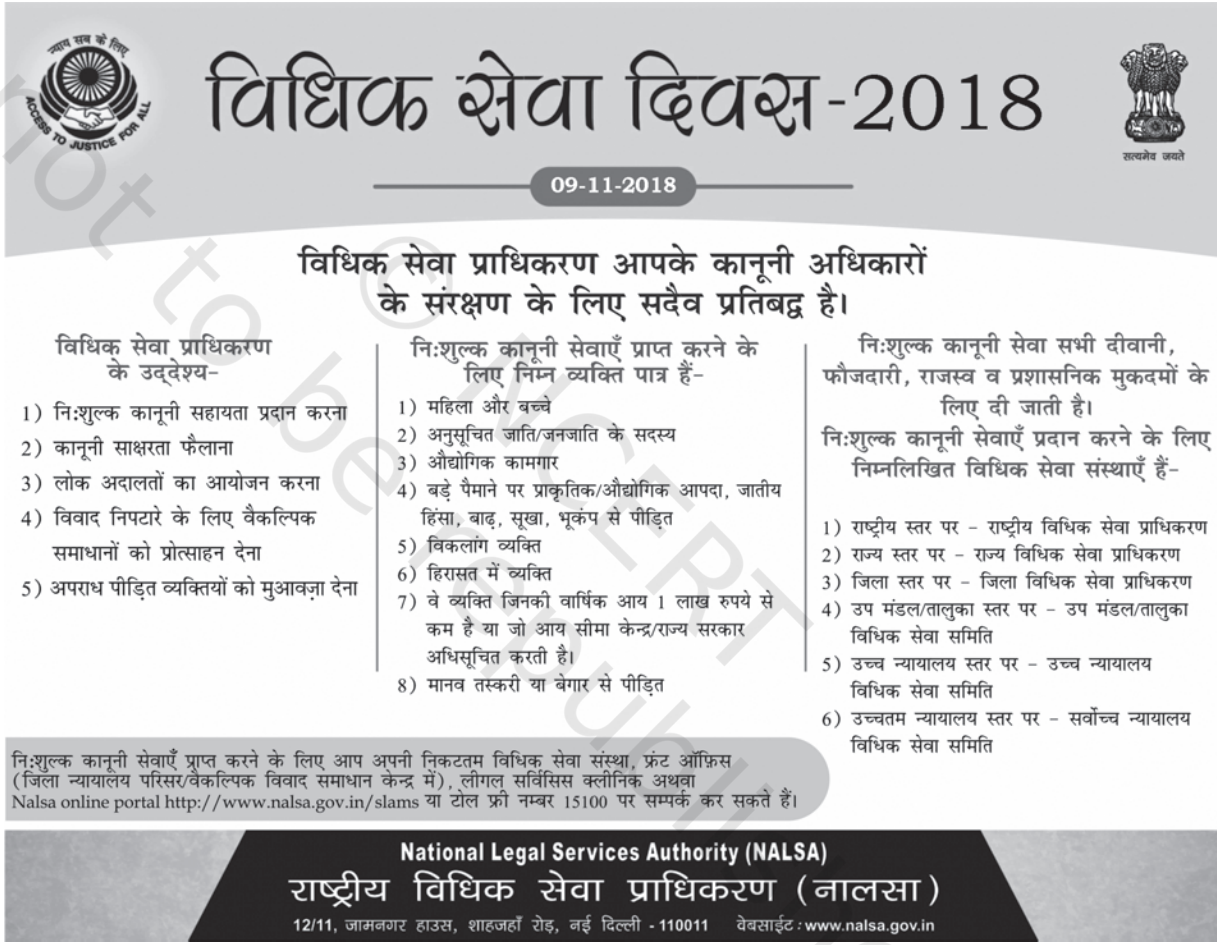

विधिक सेवा दिवस-2018

09-11-2018

विधिक सेवा प्राधिकरण आपके कानूनी अधिकारों के संरक्षण के लिए सदैव प्रतिबद्ध है।

विधिक सेवा प्राधिकरण के उद्देश्य-

1) नि:शुल्क कानूनी सहायता प्रदान करना
2) कानूनी साक्षरता फैलाना
3) लोक अदालतों का आयोजन करना
4) विवाद निपटारे के लिए वैकल्पिक समाधानों को प्रोत्साहन देना
5) अपराध पीड़ित व्यक्तियों को मुआवज़ा देना

नि:शुल्क कानूनी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए निम्न व्यक्ति पात्र हैं-

1) महिला और बच्चे
2) अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्य
3) औद्योगिक कामगार
4) बड़े पैमाने पर प्राकृतिक/औद्योगिक आपदा, जातीय हिंसा, बाढ़, सूखा, भूकंप से पीड़ित
5) विकलांग व्यक्ति
6) हिरासत में व्यक्ति
7) वे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय 1 लाख रुपये से कम है या जो आय सीमा केन्द्र/राज्य सरकार अधिसूचित करती है।
8) मानव तस्करी या बेगार से पीड़ित

नि:शुल्क कानूनी सेवा सभी दीवानी, फौजदारी, राजस्व व प्रशासनिक मुकदमों के लिए दी जाती है।

नि:शुल्क कानूनी सेवाएँ प्रदान करने के लिए निम्नलिखित विधिक सेवा संस्थाएँ हैं-

1) राष्ट्रीय स्तर पर - राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण
2) राज्य स्तर पर - राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण
3) जिला स्तर पर - जिला विधिक सेवा प्राधिकरण
4) उप मंडल/तालुका स्तर पर - उप मंडल/तालुका विधिक सेवा समिति
5) उच्च न्यायालय स्तर पर - उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति
6) उच्चतम न्यायालय स्तर पर - सर्वोच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति

नि:शुल्क कानूनी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए आप अपनी निकटतम विधिक सेवा संस्था, फ्रंट ऑफ़िस (जिला न्यायालय परिसर/वैकल्पिक विवाद समाधान केन्द्र में), लीगल सर्विसिस क्लीनिक अथवा Nalsa online portal http://www.nalsa.gov.in/slams या टोल फ्री नम्बर 15100 पर सम्पर्क कर सकते हैं।

National Legal Services Authority (NALSA)

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा)

12/11, जामनगर हाउस, शाहजहाँ रोड़, नई दिल्ली - 110011 वेबसाईट : www.nalsa.gov.in

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के विभिन्न तरीके कौन-कौन से हैं? निम्नलिखित में जो बेमेल हो उसे छाँटें।
   (क) सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से सलाह ली जाती है।
   (ख) न्यायाधीशों को अमूमन अवकाश प्राप्ति की आयु से पहले नहीं हटाया जाता।
   (ग) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का तबादला दूसरे उच्च न्यायालय में नहीं किया जा सकता।
   (घ) न्यायाधीशों की नियुक्ति में संसद की दखल नहीं है।

2. क्या न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि न्यायपालिका किसी के प्रति जवाबदेह नहीं है। अपना उत्तर अधिकतम 100 शब्दों में लिखें।

3. न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए संविधान के विभिन्न प्रावधान कौन-कौन से हैं?

4. नीचे दी गई समाचार-रिपोर्ट पढ़ें और उनमें निम्नलिखित पहलुओं की पहचान करें।
   (क) मामला किस बारे में है?
   (ख) इस मामले में लाभार्थी कौन है?
   (ग) इस मामले में फरियादी कौन है?
   (घ) सोचकर बताएँ कि कंपनी की तरफ से कौन-कौन से तर्क दिए जाएँगे?
   (ङ) किसानों की तरफ से कौन-से तर्क दिए जाएँगे?

   सर्वोच्च न्यायालय ने रिलायंस से दहानु के किसानों को 300 करोड़ रुपए देने को कहा – *निजी कारपोरेट ब्यूरो, 24 मार्च 2005*

   मुंबई – सर्वोच्च न्यायालय ने रिलायंस एनर्जी से मुंबई के बाहरी इलाके दहानु में चीकू फल उगाने वाले किसानों को 300 करोड़ रुपए देने के लिए कहा है। चीकू उत्पादक किसानों ने अदालत में रिलायंस के ताप-ऊर्जा संयंत्र से होने वाले प्रदूषण के विरुद्ध अर्जी दी थी। अदालत ने इसी मामले में अपना फ़ैसला सुनाया है।

   दहानु मुंबई से 150 कि.मी. दूर है। एक दशक पहले तक इस इलाके की अर्थ व्यवस्था खेती और बागवानी के बूते आत्मनिर्भर थी और दहानु की प्रसिद्धि यहाँ के मछली-पालन तथा जंगलों के कारण थी। सन् 1989 में इस

© NCERT not to be republished

इलाके में ताप-ऊर्जा संयंत्र चालू हुआ और इसी के साथ शुरू हुई इस इलाके की बर्बादी। अगले साल इस उपजाऊ क्षेत्र की फ़सल पहली दफ़ा मारी गई। कभी महाराष्ट्र के लिए फलों का टोकरा रहे दहानु की अब 70 प्रतिशत फ़सल समाप्त हो चुकी है। मछली पालन बंद हो गया है और जंगल विरल होने लगे हैं। किसानों और पर्यावरणविद्‌ों का कहना है कि ऊर्जा संयंत्र से निकलने वाली राख भूमिगत जल में प्रवेश कर जाती है और पूरा पारिस्थितिकी-तंत्र प्रदूषित हो जाता है। दहानु तालुका पर्यावरण सुरक्षा प्राधिकरण ने ताप-ऊर्जा संयंत्र को प्रदूषण-नियंत्रण की इकाई स्थापित करने का आदेश दिया था ताकि सल्फर का उत्सर्जन कम हो सके। सर्वोच्च न्यायालय ने भी प्राधिकरण के आदेश के पक्ष में अपना फ़ैसला सुनाया था। इसके बावजूद सन् 2002 तक प्रदूषण-नियंत्रण का संयंत्र स्थापित नहीं हुआ। सन् 2003 में रिलायंस ने ताप-ऊर्जा संयंत्र को हासिल किया और सन् 2004 में उसने प्रदूषण-नियंत्रण संयंत्र लगाने की योजना के बारे में एक खाका प्रस्तुत किया। प्रदूषण-नियंत्रण संयंत्र चूँकि अब भी स्थापित नहीं हुआ था इसलिए दहानु तालुका पर्यावरण सुरक्षा प्राधिकरण ने रिलायंस से 300 करोड़ रुपए की बैंक-गारंटी देने को कहा।

5. नीचे की समाचार-रिपोर्ट पढ़ें और, चिह्नित करें कि रिपोर्ट में किस-किस स्तर की सरकार सक्रिय दिखाई देती है।

(क) सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका की निशानदेही करें।

(ख) कार्यपालिका और न्यायपालिका के कामकाज की कौन-सी बातें आप इसमें पहचान सकते हैं?

(ग) इस प्रकरण से संबद्ध नीतिगत मुद्‌दे, कानून बनाने से संबंधित बातें, क्रियान्वयन तथा कानून की व्याख्या से जुड़ी बातों की पहचान करें।

सीएनजी - मुद्‌दे पर केंद्र और दिल्ली सरकार एक साथ

स्टाफ रिपोर्टर, द हिंदू, सितंबर 23, 2001 राजधानी के सभी ग़ैर-सीएनजी व्यावसायिक वाहनों को यातायात से बाहर करने के लिए केंद्र और दिल्ली सरकार संयुक्त रूप से सर्वोच्च न्यायालय का सहारा लेंगे। दोनों सरकारों में इस बात की सहमति हुई है। दिल्ली और केंद्र की सरकार ने पूरी परिवहन व्यवस्था को एकल ईंधन प्रणाली से चलाने के बजाय दोहरे ईंधन-प्रणाली से चलाने के बारे में नीति बनाने का फ़ैसला किया है क्योंकि एकल ईंधन प्रणाली खतरों से भरी है और इसके परिणामस्वरूप विनाश हो सकता है।

राजधानी के निजी वाहन धारकों ने सीएनजी के इस्तेमाल को हतोत्साहित करने का भी फ़ैसला किया गया है। दोनों सरकारें राजधानी में 0.05 प्रतिशत निम्न सल्फर डीजल से बसों को चलाने की अनुमति देने के बारे में दबाव डालेंगी। इसके अतिरिक्त अदालत से कहा जाएगा कि जो व्यावसायिक वाहन यूरो-दो

© NCERT not to be republished

मानक को पूरा करते हैं उन्हें महानगर में चलने की अनुमति दी जाए। हालाँकि केंद्र और दिल्ली सरकार अलग-अलग हलफनामा दायर करेंगे लेकिन इनमें समान बिंदुओं को उठाया जाएगा। केंद्र सरकार सीएनजी के मसले पर दिल्ली सरकार के पक्ष को अपना समर्थन देगी।

दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित और केंद्रीय पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्री श्री राम नाईक के बीच हुई बैठक में ये फैसले लिए गए। श्रीमती शीला दीक्षित ने कहा कि केंद्र सरकार अदालत से विनती करेगी कि डॉ. आरए मशेलकर की अगुआई में गठित उच्चस्तरीय समिति को ध्यान में रखते हुए अदालत बसों को सीएनजी में बदलने की आखिरी तारीख आगे बढ़ा दे क्योंकि 10,000 बसों को निर्धारित समय में सीएनजी में बदल पाना असंभव है। डॉ. मशेलकर की अध्यक्षता में गठित समिति पूरे देश के ऑटो ईंधन नीति का सुझाव देगी। उम्मीद है कि यह समिति छः माह में अपनी रिपोर्ट पेश करेगी।

मुख्यमंत्री ने कहा कि अदालत के निर्देशों पर अमल करने के लिए समय की ज़रूरत है। इस मसले पर समग्र दृष्टि अपनाने की बात कहते हुए श्रीमती दीक्षित ने बताया– सीएनजी से चलने वाले वाहनों की संख्या, सीएनजी की आपूर्ति करने वाले स्टेशनों पर लगी लंबी कतार की समाप्ति, दिल्ली के लिए पर्याप्त मात्रा में सीएनजी ईंधन जुटाने तथा अदालत के निर्देशों को अमल में लाने के तरीके और साधनों पर एक साथ ध्यान दिया जाएगा।

सर्वोच्च न्यायालय ने ··· सीएनजी के अतिरिक्त किसी अन्य ईंधन से महानगर में बसों को चलाने की अपनी मनाही में छूट देने से इन्कार कर दिया था लेकिन अदालत का कहना था कि टैक्सी और ऑटो-रिक्शा के लिए भी सिर्फ सीएनजी इस्तेमाल किया जाए, इस बात पर उसने कभी ज़ोर नहीं डाला। श्री राम नाईक का कहना था कि केंद्र सरकार सल्फर की कम मात्रा वाले डीजल से बसों को चलाने की अनुमति देने के बारे में अदालत से कहेगी, क्योंकि पूरी यातायात व्यवस्था को सीएनजी पर निर्भर करना खतरनाक हो सकता है। राजधानी में सीएनजी की आपूर्ति पाईपलाइन के ज़रिए होती है और इसमें किसी किस्म की बाधा आने पर पूरी सार्वजनिक यातायात प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाएगी।

6. निम्नलिखित कथन इक्वाडोर के बारे में है। इस उदाहरण और भारत की न्यायपालिका के बीच आप क्या समानता अथवा असमानता पाते हैं?

सामान्य कानूनों की कोई संहिता अथवा पहले सुनाया गया कोई न्यायिक फ़ैसला मौजूद होता तो पत्रकार के अधिकारों को स्पष्ट करने में मदद मिलती। दुर्भाग्य से इक्वाडोर की अदालत इस रीति से काम नहीं करती। पिछले मामलों में उच्चतर अदालत के न्यायाधीशों ने जो फ़ैसले दिए हैं उन्हें कोई न्यायाधीश

© NCERT not to be republished

उदाहरण के रूप में मानने के लिए बाध्य नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका के विपरीत इक्वाडोर (अथवा दक्षिण अमेरिका में किसी और देश) में जिस न्यायाधीश के सामने अपील की गई है उसे अपना फ़ैसला और उसका कानूनी आधार लिखित रूप में नहीं देना होता। कोई न्यायाधीश आज एक मामले में कोई फ़ैसला सुनाकर कल उसी मामले में दूसरा फ़ैसला दे सकता है और इसमें उसे यह बताने की ज़रूरत नहीं कि वह ऐसा क्यों कर रहा है।

7. निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अमल में लाए जाने वाले विभिन्न क्षेत्राधिकार; मसलन - मूल, अपीली और परामर्शकारी - से इनका मिलान कीजिए।
   (क) सरकार जानना चाहती थी कि क्या वह पाकिस्तान - अधिग्रहीत जम्मू-कश्मीर के निवासियों की नागरिकता के संबंध में कानून पारित कर सकती है।
   (ख) कावेरी नदी के जल विवाद के समाधान के लिए तमिलनाडु सरकार अदालत की शरण लेना चाहती है।
   (ग) बांध स्थल से हटाए जाने के विरुद्ध लोगों द्वारा की गई अपील को अदालत ने ठुकरा दिया।

8. जनहित याचिका किस तरह गरीबों की मदद कर सकती है?

9. क्या आप मानते हैं कि न्यायिक सक्रियता से न्यायपालिका और कार्यपालिका में विरोध पनप सकता है? क्यों ?

10. न्यायिक सक्रियता मौलिक अधिकारों की सुरक्षा से किस रूप में जुड़ी है? क्या इससे मौलिक अधिकारों के विषय-क्षेत्र को बढ़ाने में मदद मिली है?

© NCERT not to be republished